चरियापिटक



भिक्षु धर्मरक्षित

चरिया-पिटक

[मूल पालि और हिन्दी अनुवाद सहित]

अनुवादक
भिक्षु धर्मरक्षित

प्रकाशक
मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स
कचौड़ी गली, बनारस
१९५४



मूल्य १।)

प्रकाशक—मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स, कचौड़ीगली, बनारस
मुद्रक—ओम्‌प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, बनारस, ४५८५-११

आमुख

'चरिया-पिटक' खुद्दक निकाय का पन्द्रहवाँ ग्रन्थ है। यह तीन वग्गों में विभक्त है—(१) अकित्ति वग्ग (२) हत्थि वग्ग (३) युधञ्जय वग्ग। चरिया (= चर्य्या) के अनुसार १०, १०, १५ के क्रम से ३५ चर्य्यायें हैं। परिच्छेदों के अनुसार इसमें सात परिच्छेद हैं। इन चर्य्याओं का संग्रह पारमिता के अनुसार हुआ है। पारमिता शब्द का अर्थ है पूर्णत्व। पालि में इसे पारमी कहते हैं। पारमी को पूर्ण किये बिना कोई भी व्यक्ति 'बुद्ध' नहीं हो सकता है। पारमितायें दस हैं—(१) दान (२) शील (३) नैष्कर्म्य (४) प्रज्ञा (५) वीर्य (६) क्षान्ति (७) सत्य (८) संकल्प (९) मैत्री और (१०) उपेक्षा। इन पारमिताओं की पूर्णता के बाद ही हमारे भगवान् 'बुद्ध' बन सके थे। उन्होंने पूर्व-जन्मों में इन पारमिताओं का अभ्यास किया था। मानव जाति के सम्मुख यह सर्वोत्तम आदर्श है।

'चरिया-पिटक' में केवल सात पारमिताओं का ही वर्णन है। इसमें जितनी चर्य्यायें संगृहीत हैं, वे सात पारमिताओं से ही सम्बन्धित हैं। वे सात पारमितायें हैं—दान, शील, नैष्कर्म्य, अधिष्ठान, सत्य, मैत्री और उपेक्षा। इसमें जितनी चर्य्यायें आई हैं, वे सब 'जातक' में भी हैं, किन्तु 'जातक' की वर्णन-शैली से चरिया-पिटक में भिन्नता है। प्रत्येक पारमिता के प्रारम्भ में जो चर्य्या आई है, उसका आरम्भ 'यदा अहोसिं' से हुआ है, किन्तु बाद में आनेवाली अन्य चर्य्याओं का आरम्भ 'पुनापरं यदा होमि' से हुआ है।

ग्रन्थ में केवल वही चर्य्यायें संगृहीत हैं, जो इस भद्रकल्प में घटित हुई थीं। इसीलिए ग्रन्थ के प्रारम्भ में कहा गया है :—

"कप्पे च सतसहस्से चतुरो च असङ्ख्येय्ये।
एत्थन्तरे यं चरितं सब्बं तं बोधिपाचनं॥
अतीतकप्पे चरितं ठपयित्वा भवाभवे।
इमम्हि कप्पे चरितं पवक्खिस्सं सुणोहि मे॥"

अर्थात्—चार असंख्य एक लाख कल्पों के मध्य जो चर्य्यायें हैं, वह सब बुद्धत्व की ओर ले जानेवाली हैं। बीते हुए कल्पों में जन्मजन्मान्तर की चर्य्याओं को छोड़, मैं (केवल) इसी कल्प की चर्य्याओं को कहूँगा, (इस) मेरे (कथन) को सुनो।

'चरिया-पिटक' की अपनी एक अलग विशेषता है। इसको पढ़ने से पारमिताओं को पूर्ण करने की प्रेरणा होती है। भगवान् बुद्ध के प्रति सम्मान और गौरव उत्पन्न होता है। संसार से मुक्त होने की भावना जागृत होती है। बोधिसत्व की इन चर्य्याओं से साहस प्राप्त होता है। कठिन से भी कठिन कार्य को करने, विपत्ति को झेलने, सुख-दुःख में एक समान बने रहने का दृढ़ विचार होता है। इन चर्य्याओं ने न जाने कितने व्यक्तियों द्वारा 'बुद्धत्व-प्राप्ति' के लिए प्रतिज्ञा कराई हैं। इनमें वह आकर्षण, दया, सहिष्णुता, क्षमा, त्याग, ओजस्विता और उत्साह है कि ये व्यक्ति को ऊपर उठाकर उन्नति के शिखर की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती हैं।

'चरिया-पिटक' की चर्य्यायें केवल 'महागोविन्द चरियं' को छोड़ कर अन्य सब 'जातक' में आई हुई हैं। चरिया-पिटक की चर्य्याओं का विवरण इस प्रकार जानना चाहिए:—

१. दान पारमिता

१. अकित्ति चरियं	अकित्ति जातक (४८०)
२. सङ्ख चरियं	सङ्खपाल जातक (५२४)
३. कुरुधम्म चरियं	कुरुधम्म जातक (२७६)

अनुक्रमणिका

पहला परिच्छेद

दूसरा परिच्छेद

तीसरा परिच्छेद

चौथा परिच्छेद

पाँचवाँ परिच्छेद

छठाँ परिच्छेद

सातवाँ परिच्छेद

---

४. महासुदस्सन चरियं	महासुदस्सन जातक (९५)
५. महागोविन्द चरियं	महागोविन्द सुत्तन्त (दीघ निकाय १९)
६. निमिराज चरियं	निमि जातक (५४१)
७. चन्दकुमार चरियं	खण्डहाल जातक (५४२)
८. सिविराज चरियं	सिवि जातक (४९९)
९. वेस्सन्तर चरियं	वेस्सन्तर जातक (५४७)
१०. ससपण्डित चरियं	सस जातक (३१६)

२. सील पारमिता

११. सीलवनाग चरियं	सीलवनाग जातक (७२)
१२. भूरिदत्त चरियं	भूरिदत्त जातक (५४३)
१३. चम्पेय्यनाग चरियं	चम्पेय्य जातक (५०६)
१४. चूलबोधि चरियं	चुल्लबोधि जातक (४४३)
१५. महिसराज चरियं	महिस जातक (२७८)
१६. ससराज चरियं	सस जातक (४८२)
१७. मातंग चरियं	मातंग जातक (४९७)
१८. धम्म देवपुत्त चरियं	धम्म जातक (४५७)
१९. जयद्दिस चरियं	जयद्दिस जातक (५१३)
२०. सङ्खपाल चरियं	सङ्खपाल जातक (५२४)

३. नेक्खम्म पारमिता

२१. युधञ्जय चरियं	युधञ्जय जातक (४६०)
२२. सोमनस्स चरियं	सोमनस्स जातक (५०५)
२३. अयोघर चरियं	अयोघर जातक (५१०)
२४. भीस चरियं	भिस जातक (४८८)
२५. सोणपण्डित चरियं	सोणनन्द जातक (५३२)

४. अधिट्ठान पारमिता

२६. तेमिय चरियं	तेमिय जातक (५३८)

५. सच्च पारमिता

२७. कपिराज चरियं	कपि जातक (२५०)
२८. सच्चसव्हय चरियं	सच्चंकिर जातक (७३)
२९. वट्टपोतक चरियं	वट्ट जातक (३५)
३०. मच्छराज चरियं	मच्छ जातक (३४)
३१. कण्हदीपायन चरियं	कण्हदीपायन जातक (४४४)
३२. सुतसोम चरियं	महासुतसोम जातक (५३७)

६. मैत्री पारमिता

३३. सुवण्णसाम चरियं	सस जातक ५४०)
३४. एकराज चरियं	एकराज जातक (३०३)

७. उपेक्खा पारमिता

३५. महालोमहंस चरियं	लोमहंस जातक (९४)

इन चर्य्याओं में से अनेक कथायें दीघनिकाय, सुत्त-निपात, अंगुत्तर निकाय आदि ग्रन्थों में भी मिलती हैं। संस्कृत के जातकमाला नामक ग्रन्थ में भी ३५ चर्य्यायें आई हुई हैं, जिनमें दस चर्य्यायें 'चरिया-पिटक' में उपलब्ध हैं। महावस्तु में सुंसुमार जातक, महागोविन्द चर्य्या और वानर जातक आये हुए हैं, जो 'चरिया-पिटक' में विद्यमान हैं। भद्रकल्प-अवदान में सीलवनाग और सुतसोम की कथायें मिलती हैं। बोधिसत्व-अवदान में सिवि, सस, मच्छ, वट्टपोतक, सस और सुतसोम की जन्म-कथायें वर्णित हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि चरिया-पिटक में आई

हुई चर्यायें केवल जातक और चरिया-पिटक में ही नहीं हैं, प्रत्युत सम्पूर्ण पालि एवं संस्कृत बौद्ध-साहित्य में व्यापक रूप से मिलती हैं।

× × ×

चरिया-पिटक का हिन्दी अनुवाद मैंने सन् १९५२ में किया था और क्रमशः 'धर्मदूत' में प्रकाशित भी कर दिया था। इधर इस ग्रन्थ के इण्टरमीडिएट कोर्स में पालि की पाठ्य पुस्तिका के रूप में स्वीकृत होने के कारण बहुत माँग थी। यद्यपि इसके मूल ग्रन्थ का प्रकाशन भिक्षु उत्तमा (बर्मा) एवं भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट ने कराया था, किन्तु वे दोनों उपलब्ध न थे। विद्यार्थियों का सदा आग्रह बना रहा कि हिन्दी अनुवाद के साथ चरियापिटक का प्रकाशन हो। इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए मेरे शिष्य श्री विश्वनाथ मिश्र तथा श्री प्रेमचन्द श्रीवास्तव और प्रकाशक श्री मन्नालाल अभिमन्यु विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने बाध्य करके इतना शीघ्र इसे प्रकाशित कराया है। मुख-पृष्ठ की डिजाइन श्री काँजीलाल जी की देन है, जिसमें 'ससपण्डित चरियं' (१०) की कथा चित्रित की गई है। पाण्डु-लिपि को श्री वेदराज प्रसाद ने तैयार किया था। मैं इन सब लोगों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

सारनाथ, बनारस
४-९-५४

भिक्षु धर्मरक्षित

चरियापिटकं

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

पठमो परिच्छेदो

दानपारमिता

१. अकित्ति-चरियं

कप्पे च सत-सहस्से चतुरो च असङ्खेय्ये
एत्थ'न्तरे यं चरितं सब्बं तं बोधिपाचनं ॥ १ ॥

अतीतकप्पे चरितं पठयित्वा भवाभवे
इमम्हि कप्पे चरितं पवक्खिस्सं सुणोहि मे ॥ २ ॥

यदा अहं ब्रहारञ्ञे सुञ्ञे विपिनकानने
अज्झोगाहेत्वा विहरामि अकित्ति नाम तापसो ॥ ३ ॥

तदा मं तपतेजेन सन्तत्तो तिदिवाभिभू
धारेन्तो ब्राह्मणवण्णं भिक्खाय मं उपागमि ॥ ४ ॥

पवना आभतं पण्णं अतेलञ्च अलोणिकं
ममद्वारे ठितं दिस्वा सकटाहेन आकिरिं ॥ ५ ॥

तस्स दत्वान'हं पण्णं निक्कुज्जित्वान भाजनं
पुनेसनं जहित्वान पाविसिं पण्णसालकं ॥ ६ ॥

दुतियम्पि ततियम्पि उपागञ्छि मम'न्तिकं
अकम्पितो अनोलग्गो एवमेवमदा'सहं ॥ ७ ॥

न मे तप्पच्चया अत्थि सरीरस्मिं विवण्णियं
पीतिसुखेन रतिया वीतिनामेमि तं दिवं ॥ ८ ॥

यदि मासम्पि द्वे मासं दक्खिणेय्यं वरं लभे
अकम्पितो अनोलीनो ददेय्यं दानमुत्तमं ॥ ९ ॥

पहला परिच्छेद

१. दान पारमिता

निदान

चार असंख्य एक लाख कल्पों के मध्य जो चर्यायें हैं, वह सब बुद्धत्व की ओर ले जानेवाली हैं ॥१॥

बीते हुए कल्पों में जन्म-जन्मान्तर की चर्याओं को छोड़, मैं (केवल) इसी कल्प[1] की चर्याओं को कहूँगा, (इस) मेरे (कथन) को सुनो ॥२॥

१. अकीर्ति चर्या

जब मैं शून्य महा अरण्य में प्रवेश कर अकीर्ति नामक तपस्वी हो विहार करता था ॥३॥

तब मेरे तप के तेज से सन्तप्त इन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण किये हुए भिक्षा के लिये मेरे पास आया ॥४॥

मैंने उसे अपने द्वार पर खड़ा देख, वन से लाये तेल-नमक-रहित पत्तियों को कड़ाही के साथ ही उडेल दिया ॥५॥

मैंने उसे पत्तियों को दे, पात्र को औंधा कर, फिर (पत्तियों को) खोजना छोड़ पर्णकुटी में प्रवेश किया ॥६॥

वह दूसरी बार भी, तीसरी बार भी मेरे पास आया, मैंने ऐसे ही अविचलित, अनासक्त (हो) दान दिया ॥७॥

उस कारण से मेरे शरीर में कुरूपता नहीं आई, मैंने प्रीति-सुख और रति से उस दिन को बिताया ॥८॥

यदि एक मास, दो मास तक भी श्रेष्ठ दान देने योग्य व्यक्ति (=दाक्षिणेय) को पाता, तो अविचलित, अ-उदास हुए उत्तम दान देता ॥९॥

न तस्स दानं ददमानो यसं लाभञ्च पत्थयिं
सब्बञ्ञुतं पत्थयानो तानि कम्मानि आचरिन्ति ॥ १० ॥

---

२. सङ्खचरियं

पुनापरं यदा होमि ब्राह्मणो सङ्खसव्हयो
महासमुद्दं तरितुकामो उपगच्छामि पट्टनं ॥ १ ॥
तत्थ'द्दसामि पटिपथे सयम्भुमपराजितं
कन्तारद्धानं पटिपन्नं तत्ताय कठिनभूमिया ॥ २ ॥
तमहं पटिपथे दिस्वा इममत्थं विचिन्तयिं
इदं खेत्तं अनुपत्तं पुञ्ञकामस्स जन्तुनो ॥ ३ ॥
यथापि कस्सको पुरिसो खेत्तं दिस्वा महागमं
तत्थ बीजं न रोपेति न सो धञ्ञेन अत्थिको ॥ ४ ॥
एवमेवाहं पुञ्ञकामो दिस्वा खेत्तवरुत्तमं
यदि तत्थ कारं न करोमि नाहं पुञ्ञेन अत्थिको ॥ ५ ॥
यथा अमच्चो मुद्दिकामो रञ्ञो अन्तेपुरे जने
न देति तेसं धनधञ्ञं मुद्दितो परिहायति ॥ ६ ॥
एवमेवाहं पुञ्ञकामो विपुलं दिस्वान दक्खिणं
यदि तस्स दानं न ददामि परिहायिस्सामि पुञ्ञतो ॥ ७ ॥
एवाहं चिन्तयित्वान ओरोहित्वा उपाहना
तस्स पादानि वन्दित्वा अदासिं छत्तुपाहनं ॥ ८ ॥
तेनेवाहं सतगुणतो सुखुमालो सुखे ठितो
अपि च दानं परिपूरेन्तो एवं तस्स अदासहन्ति ॥ ९ ॥

मैंने उसे दान देते हुए यश और लाभ की इच्छा न की, (केवल) सर्वज्ञता (= बुद्धत्व) की प्रार्थना करते हुए ही, उन कर्मों को किया ॥१०॥

---

२. शङ्ख चर्या

और फिर, जब मैं शंख नामक ब्राह्मण हुआ था, (तब) महा-समुद्र को पार करने की इच्छा से बन्दरगाह जा रहा था ॥१॥

वहाँ मैंने प्रत्येक बुद्ध[२] को रेतीले, तप्त, विषम-भूमि वाले उल्टे मार्ग पर आते हुए देखा ॥२॥

उन्हें मैंने उल्टे मार्ग पर देख कर यह विचार किया—'पुण्य चाहने वाले व्यक्ति के लिये यह खेत मिला है ॥३॥

जैसे कृषक पुरुष बहुत उपजाऊ खेत को देख कर यदि उसमें बीज नहीं रोपता है, तो वह धन का इच्छुक नहीं है ॥४॥

ऐसे ही पुण्य चाहने वाला मैं उत्तम खेत को देख यदि उसमें (पुण्याधि-) कार नहीं करूँगा, तो मैं पुण्य का इच्छुक नहीं हूँ ॥५॥

जैसे राजा की मुद्रा (= मुहर) लगाने वाला अमात्य यदि अन्तः-पुर के लोगों को धन-धान्य नहीं देता है, तो वह मुद्रा से परिहीन हो जाता है ॥६॥

ऐसे ही पुण्य चाहने वाला मैं विपुल दक्षिणा को देख, यदि उन्हें दान न दूँगा, तो पुण्य से परिहीन हो जाऊँगा ॥७॥

ऐसा मैंने सोच, जूतों को निकाल, उनके पैरों की वन्दना कर छाता और जूते दे दिये ॥८॥

उनसे मैं सौ गुना सुकुमार और सुख में रहने वाला होते हुए भी, दान (पारमिता) को पूर्ण करते उन्हें ऐसा दान दिया ॥९॥

---

३. कुरुधम्मचरियं

पुनापरं यदा होमि इन्दपत्ते पुरुत्तमे
राजा धनञ्जयो नाम कुसले दसहुपागतो ॥ १ ॥
कालिङ्गरट्ठा विसया ब्राह्मणा उपगञ्छु मं
आयाचुं मं हत्थिनागं धञ्ञं मङ्गलसम्मतं ॥ २ ॥
अवुट्ठिको जनपदो दुब्भिक्खो छातको महा
ददाहि पवरं नागं नीलं अञ्जनसव्हयं ॥ ३ ॥
न मे याचकमनुपत्ते पटिक्खेपो अनुच्छवो
मा मे भिज्जि समादानं दस्सामि विपुलं गजं ॥ ४ ॥
नागं गहेत्वा सोण्डाय भिङ्कारे रतनामये
जलं हत्थे आकिरित्वा ब्राह्मणानं अदं गजं ॥ ५ ॥
तस्मिं नागे पदिन्नम्हि अमच्चा एतदब्रवुं
किन्नु तुय्हं वरं नागं याचकानं पदस्ससि ॥ ६ ॥
धञ्ञं मङ्गलसम्पन्नं सङ्गामविजयुत्तमं
तस्मिं नागे पदिन्नम्हि किन्ते रज्जं करिस्सतीति ॥ ७ ॥
रज्जम्पि मे ददे सब्बं सरीरं दज्जमत्तनो
सब्बञ्ञुतं पियं मय्हं तस्मा नागमदासहन्ति ॥ ८ ॥

---

४. महासुदस्सनचरियं

कुसावतिम्हि नगरे यदा आसिं महीपति
महासुदस्सनो नाम चक्कवत्ती महब्बलो ॥ १ ॥
तत्थाहं दिवसे तिक्खत्तुं घोसापेमि तहिं तहिं
को किं इच्छति पत्थेति कस्स किं दीयतु धनं ॥ २ ॥

३. कुरुधर्म चर्या

और फिर, जब मैं इन्द्रप्रस्थ[३] नामक उत्तम नगर में दस कुशल-कर्मों से युक्त धनञ्जय नाम का राजा था ॥१॥

तब कलिंग राष्ट्र के ब्राह्मण मेरे पास आये और सौभाग्यवान मंगल हाथी को मुझसे माँगे ॥२॥

'(हमारे) जनपद में पानी नहीं बरसता, दुर्भिक्ष और महाअकाल पड़ा है, अञ्जन नामक नीले श्रेष्ठ हाथी को हमें दें' ॥३॥

'याचकों के आने पर इन्कार करना मेरे लिये उचित नहीं, मेरा व्रत न टूटे, मैं महाहाथी को दूँगा' ॥४॥

हाथी को सूँड़ से पकड़ कर रत्नमय भिंकार (=गडुवा) से हाथ पर जल गिरा ब्राह्मणों को हाथी दे दिया ॥५॥

उस हाथी के देने पर अमात्यों ने यह कहा—'क्या अपने श्रेष्ठ हाथी को भी याचकों को दे रहे हैं ? ॥६॥

सौभाग्यवान, मंगल-युक्त, संग्राम में उत्तम विजयी उस हाथी के दे देने पर आपका राज्य क्या करेगा ?' ॥७॥

'मैं इस सारे राज्य को भी दे दूँ, अपने शरीर को भी। मुझे सर्वज्ञता ही प्रिय है, इसलिये मैंने हाथी को दिया' ॥८॥

---

४. महासुदर्शन चर्या

जब मैं कुशावती[४] नगर में महाशक्तिशाली महासुदर्शन नामक चक्रवर्ती राजा हुआ था ॥१॥

तब मैं वहाँ दिन में तीन बार स्थान-स्थान पर घोषणा करवाता था कि कौन क्या चाहता है ? किसकी कामना करता है ? किसे क्या धन दिया जाय ? ॥२॥

को छातको को तसितो को मालं को विलेपनं
नानारत्तानि वत्थानि को नग्गो परिदहिस्सति ॥ ३ ॥
को पथे छत्तमादेति कोपाहना मुदुसुभा
इति सायञ्च पातो च घोसापेमि तहिं तहिं ॥ ४ ॥
न तं दससु ठानेसु नपि ठानसतेसु वा
अनेकसतट्ठानेसु पटियत्तं याचके धनं ॥ ५ ॥
दिवा वा यदि वा रत्ती यदि एति वनिब्बको
लद्धा यदिच्छिकं भोगं पुरहत्थो व गच्छति ॥ ६ ॥
एवरूपं महादानं अदासिं यावजीविकं
न पाहं देस्सं धनं दम्मि नपि नत्थि निचयो मयि ॥ ७ ॥
यथापि आतुरो नाम रोगतो परिमुत्तिया
धनेन वेज्जं तप्पेत्वा रोगतो परिमुच्चति ॥ ८ ॥
तथेवाहं जानमानो परिपूरेतुमसेसतो
ऊनधनं पूरयितुं देमि दानं वनिब्बके
निरालयो अपच्चासो सम्बोधिमनुपत्तिया'ति ॥ ९ ॥

---

५. महागोविन्दचरियं

पुनापरं यदा होमि सत्तराजपुरोहितो
पूजितो नरदेवेहि महागोविन्दो ब्राह्मणो ॥ १ ॥
तदाहं सत्तरज्जेसु यं मे आसि उपायनं
तेन देमि महादानं अक्खोभं सागरूपमं ॥ २ ॥
न मे देस्सं धनधञ्ञं नपि नत्थि निचयो मयि
सब्बञ्ञुतं पियं मय्हं तस्मा देमि वरं धनन्ति ॥ ३ ॥

कौन भूखा है ? कौन प्यासा है ? किसे माला और विलेपन चहिये ? कौन नंगा नाना रंग के वस्त्रों को पहनेगा ? ॥३॥

कौन मार्ग में जाने वाला (पथिक) छाता लेगा ? कौन मृदु और सुन्दर जूते ग्रहण करेगा ? इस प्रकार सायं-प्रातः स्थान-स्थान पर घोषणा कराता था ॥४॥

याचकों को धन देने के लिए दस या सौ स्थानों में ही नहीं, प्रत्युत अनेक-सौ स्थानों में व्यवस्था की गई थी ॥५॥

दिन या रात में यदि याचक आता था, तो वह इच्छानुरूप भोग (= धन) को पा, पहले हाथ से ही चला जाता था ॥६॥

इस प्रकार मैंने जीवन भर महादान दिया, न तो मैंने अप्रिय होने से धन दिया और न तो मेरे पास धन का संग्रह न था ॥७॥

जैसे पीड़ित व्यक्ति रोग से मुक्त होने के लिए धन से वैद्य को तृप्त कर रोग से मुक्त हो जाता है ॥८॥

वैसे ही मैं जानते हुए सर्वांशतः कम धन की पूर्ति के लिये अनासक्त और इच्छा-रहित हो सम्बोधि की प्राप्ति के लिए याचकों को धन देता था ॥९॥

---

५. महागोविन्द चर्या

और फिर, जब मैं राजाओं द्वारा पूजित सात राजाओं का पुरोहित महागोविन्द नामक ब्राह्मण हुआ था ॥१॥

तब सातों राज्यों में जो मेरी आय थी, उससे मैं शान्त सागर के समान महादान देता था ॥२॥

न मुझे धन-धान्य अप्रिय था और न तो मेरे पास धन का संग्रह न था, मुझे सर्वज्ञता प्रिय थी, इसलिये ही मैंने श्रेष्ठ धन दिया ॥३॥

---

६. निमिराजचरियं

पुनापरं यदा होमि मिथिलायं पुरुत्तमे
निमि नाम महाराजा पण्डितो कुसलत्थिको ॥ १ ॥
तदाहं मापयित्वान चतुसालं चतुमुखं
तत्थ दानं पवत्तेसिं मिग-पक्खि-नरादिनं ॥ २ ॥
अच्छादनञ्च सयनञ्च अन्नपानञ्च भोजनं
अब्बोच्छिन्नं करित्वान महादानं पवत्तयिं ॥ ३ ॥
यथापि सेवको सामिं धनहेतुमुपागतो
कायेन वाचा मनसा अराधनीयमेसति ॥ ४ ॥
तथे'वाहं सब्बभवे परियेस्सामि बोधिजं
दानेन सत्ते तप्पेत्वा इच्छामि बोधिमुत्तमन्ति ॥ ५ ॥

---

७. चन्दकुमारचरियं

पुनापरं यदा होमि एकराजस्स अत्रजो
नगरे पुप्फवतिया कुमारो चन्दसव्हयो ॥ १ ॥
तदाहं यजना मुत्तो निक्खन्तो यञ्ञवाटतो
संवेगं जनयित्वान महादानं पवत्तयिं ॥ २ ॥
नाहं पिवामि खादामि नपि भुञ्जामि भोजनं
दक्खिणेय्यं अदत्वान अपि छप्पञ्च रत्तियो ॥ ३ ॥
यथापि वाणिजो नाम कत्वान भण्डसञ्चयं
यत्थ लाभो महा होति तत्थाहरति भण्डकं ॥ ४ ॥
तथेव सकभुत्तापि परे दिन्नं महप्फलं
तस्मा परस्स दातब्बं सतभागो भविस्सति ॥ ५ ॥

६. निमिराज चर्या

और फिर, जब मैं श्रेष्ठ मिथिला[१] नगर में पुण्य करने का इच्छुक विद्वान् निमि नामक महाराजा हुआ था ॥१॥

तब मैंने चारों दिशाओं में चार शालायें बनवा, वहाँ पशु, पक्षी, मनुष्य आदि (सभी) को दान दिया ॥२॥

ओढ़ने-पहनने के लिए वस्त्र, शयन, पेय और भोजन अ-विच्छिन्न (= अटूट) करके महादान दिया ॥३॥

जैसे धन के लिए पास आया हुआ सेवक स्वामी को काया, वाणी, मन से प्रसन्न करने के (उपाय) को ही ढूँढ़ता है ॥४॥

वैसे ही मैं सब जन्मों में बुद्धत्व को खोजूँगा। दान से प्राणियों को तृप्त कर उत्तम बोधि (= परम ज्ञान) को चाहता हूँ ॥५॥

---

७. चन्द्रकुमार चर्या

और फिर, जब मैं पुष्पवती[१] नगर में चन्द्रकुमार नामक एकराजा का पुत्र हुआ था ॥१॥

तब मैंने यज्ञ-कुण्ड से मुक्त हो निकल संवेग उत्पन्न कर महादान दिया ॥२॥

मैं दाक्षिणेय लोगों को बिना दान दिये पाँच-छः रात तक भी नहीं खाता-पीता था और न तो भोजन ही करता था ॥३॥

जैसे व्यापारी सामान एकत्र कर, जहाँ बहुत लाभ होता है, वहाँ सामान को ले जाता है ॥४॥

वैसे ही अपने खाने से दूसरे को देने में महाफल होता है, इसलिये दूसरे को देना चाहिये, वह सौ गुना होगा ॥५॥

एतमत्थवसं ञत्वा देमि दानं भवाभवे
न पटिक्कमामि दानतो सम्बोधिमनुपत्तिया 'ति ॥ ६ ॥

---

८. सिविराजचरियं

अरिट्ठसव्हये नगरे सिवि नामासिं खत्तियो
निसज्ज पासादवरे एवं चिन्तेसहं तदा ॥ १ ॥
यं किञ्चि मानुसं दानं अदिन्नं मे न विज्जति
योपि याचेय्य मं चक्खुं ददेय्यं अविकम्पितो ॥ २ ॥
ममसङ्कप्पमञ्ञाय सक्को देवानमिस्सरो
निसिन्नो देवपरिसाय इदं वचनमब्रवि ॥ ३ ॥
निसज्ज पासादवरे सिविराजा महिद्धिको
चिन्तेन्तो विविधं दानं अदेय्यं सो न पस्सति ॥ ४ ॥
तथं नु वितथं नेतं हन्द विमंसयामि तं
मुहुत्तं आगमेय्याथ याव जानामि तं मनन्ति ॥ ५ ॥
पवेधमानो फलितसिरो वलितगत्तो जरातुरो
अन्धवण्णो'व हुत्वान राजानं उपसङ्कमि ॥ ६ ॥
सो तदा पग्गहेत्वान वामं दक्खिणबाहु च
सिरस्मिं अञ्जलिं कत्वा इदं वचनमब्रवि ॥ ७ ॥
याचामि तं महाराज धम्मिक रट्ठवड्ढन !
तव दानरता कित्ति उग्गता देवमानुसे ॥ ८ ॥
उभोपि नेत्ता नयना अन्धा उपहता मम
एकं मे नयनं देहि त्वम्पि एकेन यापया'ति ॥ ९ ॥
तस्साहं वचनं सुत्वा हट्ठो संविग्गमानसो
कतञ्जली वेदजातो इदं वचनमब्रविं ॥ १० ॥

· इस बात को अर्थ के साथ जानकर लाभालाभ में भी दान देता था, सम्बोधि की प्राप्ति के लिए (कभी भी) दान देने से नहीं मुड़ा ॥६॥

---

८. शिविराज चर्या

जब मैं अरिष्ट॰ नामक नगर में शिवि नामक क्षत्रिय (= राजा) था, तब श्रेष्ठ प्रासाद में बैठकर ऐसा विचार किया ॥१॥

जो कुछ मानुषी दान है, वह मेरे द्वारा बिना दिया गया नहीं है, जो भी मेरे चक्षु को माँगेगा, अविचिलित हो मैं दे दूँगा ॥२॥

देवताओं का स्वामी शक्र (= इन्द्र) मेरे संकल्प को जानकर देव-परिषद् में बैठा हुआ यह बात कहा ॥३॥

'महाप्रतापी शिविराज श्रेष्ठ प्रासाद में बैठकर विविध दान को विचारते हुए, वह न दिया गया (दान) नहीं देखता है ॥४॥

यह सत्य है या असत्य—अच्छा हो कि मैं उसकी परीक्षा लूँ, मुहूर्त भर आप ठहरें, जब तक कि मैं उसका मन जान लूँ' ॥५॥

(वह) काँपता हुआ, पके-सिर, झुर्री पड़े शरीर, बुढ़ापे से आतुर, और अन्धे का रूप धारण कर राजा के पास आया ॥६॥

तब वह दायीं-बायीं दोनों बाहों को उठाकर, सिर पर अञ्जलि कर यह बात कहा—॥७॥

'हे धार्मिक ! राष्ट्र-वर्द्धन महाराज !! आपकी दान देने में लगे रहने की कीर्ति देव-और मनुष्य (लोकों) में फैली हुई है, मैं (भी) आपसे माँगता हूँ ॥८॥

मेरे दोनों भी नेत्र=नयन अन्धे और नष्ट हैं, मुझे एक नेत्र दें, और एक से आप काम चलायें' ॥९॥

मैंने उसके वचन को सुन हर्षोत्फुल्ल, संविग्नमन हो हाथ जोड़ आनन्द-पूर्वक यह बात कही ॥१०॥

इदानाहं चिन्तयित्वान पासादतो इधागतो
त्वं मम चित्तमञ्ञाय नेत्तं याचितुमागतो ॥ ११ ॥
अहो मे मानसं सिद्धं सङ्कप्पो परिपूरितो
अदिन्नपुब्बं दानवरं अज्ज दस्सामि याचके ॥ १२ ॥
एहि सीवक ! उट्ठेहि मा दन्धहि मा पवेधयि
उभोपि नयने देहि उप्पाटेत्वा वनिब्बके ॥ १३ ॥
ततो सो चोदितो मय्हं सीवको वचनंकरो
उद्धरित्वान पादासि तालमिञ्जं'व याचके ॥ १४ ॥
ददमानस्स देन्तस्स दिन्नदानस्स मे सतो
चित्तस्स अञ्ञथा नत्थि बोधिया येव कारणा ॥ १५ ॥
न मे देस्सा उभो चक्खू अत्ता न मे न देस्सियो
सब्बञ्ञुतं पियं मय्हं तस्मा चक्खुं अदासहन्ति ॥ १६ ॥

---

९. वेस्सन्तरचरियं

या मे अहोसि जनिका फुसती नाम खत्तिया
सा अतीतासु जातिसु सक्कस्स च महेसिया ॥ १ ॥
तस्सा आयुक्खयं दिस्वा देविन्दो एतदब्रवि-
ददामि ते दस वरे वर भद्दे ! यदिच्छसीति ॥ २ ॥
एवं वुत्ता च सा देवी सक्कं पुरिन्दमब्रवि
किन्नु मे अपराधत्थि किन्नु देस्सा अहन्तव
रम्मा चावेसि मं ठाना वातो'व धरणिं रुहन्ति ॥ ३ ॥
एवं वुत्ते च सो सक्को पुन तस्सेदमब्रवि
न चेव ते कतं पापं न च मे त्वमसि अप्पिया ॥ ४ ॥
एत्तकं एव ते आयुं चवनकालो भविस्सति
पटिमण्ह मया दिन्ने वरे दस वरुत्तमेति ॥ ५ ॥

'अभी मैं विचार कर प्रसाद से यहाँ आया हूँ, तुम मेरे चित्त को जानकर नेत्र माँगने आये हो ॥११॥

अहा ! मेरे मन की बात सिद्ध हो गई, संकल्प परिपूर्ण हो गया, पहले नहीं दिये श्रेष्ठ दान को आज याचक को दूँगा ॥१२॥

आओ, शीवक❀ ! उठो, मत देर करो, मत विचलित हो, मेरे दोनों नेत्रों को निकाल कर याचक को दे दो' ॥१३॥

तत्पश्चात् मेरी आज्ञा पा वह आज्ञाकारी ताड़ की गुद्दी की भाँति निकाल कर याचक को दे दिया ॥१४॥

मेरे देते, देते हुए, दे देने पर, (केवल) बोधि (= परम ज्ञान) के ही कारण चित्त अन्यथा नहीं हुआ ॥१५॥

न मुझे दोनों नेत्र अप्रिय थे और न तो मुझे आत्मा (= अपना) ही अप्रिय था, मुझे सर्वज्ञता प्रिय थी इसीलिए मैंने चक्षुओं को दिया ॥१६॥

---

९. वैश्यन्तर चर्या

जो मेरी फुसती नामक क्षत्राणी माता थी, वह पूर्व जन्म में इन्द्र की महिषी थी ॥१॥

उसके आयु-क्षय को देखकर इन्द्र ने यह कहा—'भद्रे ! मैं तुझे दस वरों को देता हूँ, जो चाहो माँगो' ॥२॥

ऐसा कहने पर उस देवी ने देवेन्द्र शक्र से यह कहा—'मेरा क्या अपराध है ? क्या मैं आपको अप्रिय हूँ ? वायु के वृक्ष को पृथ्वी पर गिराने के समान मुझे रम्य स्थान से च्युत कर रहे हैं' ॥३॥

ऐसा कहने पर उस इन्द्र ने उसे फिर यह कहा—'न तूने पाप किया है, और न तो तू मुझे अप्रिय है, तेरी इतनी ही आयु है, अब च्युति समय होगा, मेरे दिये दस उत्तम वरों को ग्रहण कर' ॥४–५॥

❀ शीवक राजा का वैद्य था—अट्ठकथा

सक्केन सा दिन्नवरा तुट्ठहट्ठा पमोदिता
ममं अब्भन्तरं कत्वा फुसती दस वरे वरी ॥ ६ ॥
ततो चुता सा फुसती खत्तिये उपपज्जथ
जेतुत्तरम्हि नगरे सञ्जयेन समागमि ॥ ७ ॥
यदाहं फुसतिया कुच्छि ओक्कन्तो पियमातुया
मम तेजेन मे माता सदा दानरता अहु ॥ ८ ॥
अधने आतुरे जिण्णे याचके पद्धिके जने
समणब्राह्मणे खीणे देति दानं अकिञ्चने ॥ ९ ॥
दसमासे धारयित्वान करोन्ते पुरपदक्खिणं
वेस्सानं वीथिया मज्झे जनेसि फुसती ममं ॥ १० ॥
न मय्हं मेत्तिकं नामं नपि पेत्तिकसम्भवं
जातोम्हि वेस्सवीथिया तस्मा वेस्सन्तरो अहु ॥ ११ ॥
यदाहं दारको होमि जातिया अट्ठवस्सिको
तदा निसज्ज पासादे दानं दातुं विचिन्तयिं ॥ १२ ॥
हदयं ददेय्यं चक्खुं मंसम्पि रुहिरम्पि च
ददेय्यं कायं सावेत्वा यदि कोचि याचये ममं ॥ १३ ॥
सभावं चिन्तयन्तस्स अकम्पितमसण्ठितं
अकम्पि तत्थ पठवी सिनेरुवनवटंसका ॥ १४ ॥
अद्धद्धमासे पण्णरसे पुण्णमासे उपोसथे
पच्चयं नागमारुय्ह दानं दातुं उपागमिं ॥ १५ ॥
कालिङ्गरट्ठविसया ब्राह्मणा उपगञ्छु मं
आयाचुं मं हत्थिनागं धञ्ञं मङ्गलसम्मतं ॥ १६ ॥
अवुट्ठितो जनपदो दुब्भिक्खो छातको महा
ददाहि पवरं नागं सब्बसेतं गजुत्तमं ॥ १७ ॥
ददामि न विकम्पामि यं मं याचन्ति ब्राह्मणा
सन्तं नप्पटिगुहामि दाने मे रमती मनो ॥ १८ ॥

इन्द्र द्वारा वर दिये जाने पर हर्षोत्फुल्ल एवं प्रमुदित हो, मुझे अन्तर्गत कर उस फुसती ने दस वर माँगे ॥६॥

वहाँ से च्युत हो वह फुसती राजकुल में उत्पन्न हुई, और जेत्तोत्तर नगर में सञ्जय के साथ उसका विवाह हुआ ॥७॥

जब मैं अपनी प्यारी फुसती माँ के गर्भ में आया तब मेरे तेज से मेरी माता सदा दान-रत हुई ॥८॥

वह निर्धन, आतुर, वृद्ध, भिखारी, पथिक, श्रमण-ब्राह्मण, धन-समाप्त एवं अपरिग्रही लोगों को दान देती थी ॥९॥

दस मास मुझे (गर्भ में) धारण कर नगर की प्रदक्षिणा करते वैश्यों की गली के मध्य फुसती ने मुझे जन्म दिया ॥१०॥

मेरा न माता का दिया नाम था और न तो पिता का ही। मैं वैश्य-गली में उत्पन्न हुआ, इसलिए मेरा नाम वैश्यन्तर पड़ा ॥११॥

जब मैं जन्म से केवल आठ वर्ष का बालक था, तब प्रासाद में बैठकर दान देने का विचार किया ॥१२॥

'यदि कोई मुझसे माँगेगा तो मैं घोषणा कर हृदय, चक्षु, मांस, रक्त और शरीर को भी दान कर दूँगा' ॥१३॥

स्वभाव का विचार करते समय अकम्पित, अविचलित पृथ्वी सिनेरु-वन-माला के साथ काँप उठी ॥१४॥

मैं आधे-आधे महीने पर अमावस्या एवं पूर्णिमा को उपोसथ के दिन प्रत्यय नामक हाथी पर सवार होकर दान देने जाता था ॥१५॥

(एक दिन) कलिङ्ग राष्ट्रवासी ब्राह्मण मेरे पास आये और मेरे मङ्गल माने हुए हस्तिनाग (= हाथी) को माँगे ॥१६॥

'जनपद में अवृष्टि, दुर्भिक्ष और महाअकाल पड़ा है, सर्वश्वेत उत्तम, श्रेष्ठ हाथी को हमें दें' ॥१७॥

'ब्राह्मण जो मुझसे माँगते हैं, उसे दूँगा, विचलित न होऊँगा, रहते हुए न छिपाऊँगा, दान में मेरा मन रमण कर रहा है ॥१८॥

न मे याचकमनुप्पत्ते पटिक्खेपो अनुच्छवो
मा मे भिज्जि समादानं दस्सामि विपुलं गजं ॥ १९ ॥
नागं गहेत्वा सोण्डाय भिङ्कारे रतनामये
जलं हत्थे आकिरित्वा ब्राह्मणानं अदं गजं ॥ २० ॥
पुनापरं ददन्तस्स सब्बसेतं गजुत्तमं
तदापि पठवी कम्पि सिनेरुवनवटंसका ॥ २१ ॥
तस्स नागस्स दानेन सिवयो कुद्धा समागता
पब्बाजेसुं सका रट्ठा वङ्कं गच्छतु पब्बतं ॥ २२ ॥
तेसं निच्छुभमानानं अकम्पितमसण्ठितं
महादानं पवत्तेतुं एकं वरमयाचिस्सं ॥ २३ ॥
याचिता सिवयो सब्बे एकं वरमदंसु मे
आसावयित्वा कण्णभेरिं महादानं ददाम'हं ॥ २४ ॥
अथेत्थ वत्तति सद्दो तुमुलो भेरवो महा
दानेन मं नीहरन्ति पुन दानं ददाम'हं ॥ २५ ॥
हत्थी अस्से रथे दत्वा दासी दासं गवन्धनं
महादानं ददित्वान नगरा निक्खमिं तदा ॥ २६ ॥
निक्खमित्वान नगरा निवत्तित्वा विलोकिते
तदापि पठवी कम्पि सिनेरुवनवटंसका ॥ २७ ॥
चतुवाहिं रथं दत्वा ठत्वा चातुमहापथे
एकाकियो अदुतियो मद्दिदेविं इदमब्रविं ॥ २८ ॥
त्वं मद्दि ! कण्हं गण्हाहि लहुका एसा कनिट्ठका
अहं जालिं गहेस्सामि गरुको भातिको हि सो ॥ २९ ॥
पदुमं पुण्डरीकं'व मद्दी कण्हाजिनमग्गही
अहं सुवण्णबिम्बं'व जालिं खत्तियमग्गहिं ॥ ३० ॥

याचक के आने पर इन्कार करना मेरे लिये योग्य नहीं, मेरी प्रतिज्ञा मत भंग हो, मैं उत्तम हाथी को दान कर दूँगा' ॥१९॥

हाथी को सूँड़ से पकड़ कर रत्नमय भिंकार (= गड़ुवा) से उनके हाथों पर जल गिरा ब्राह्मणों को हाथी दे दिया ॥२०॥

और फिर, सर्वश्वेत उत्तम हाथी को देते हुए, उस समय भी पृथ्वी सिनेरु-वन-माला के साथ काँप उठी ॥२१॥

उस हाथी के दान से शिवि-देशवासी क्रुद्ध हो उठे और (यह कह कर) अपने देश से निर्वासित कर दिये—'वंक पर्वत जाओ' ॥२२॥

उनके द्वारा निर्वासित किये जाते हुए मैंने अकम्पित और अविचलित हो महादान देने के लिये एक वर माँगा ॥२३॥

याचना करने पर सभी शिवि-देशवासियों ने मुझे एक वर दिया। मैंने नगाड़े से घोषणा करा महादान दिया ॥२४॥

दान देने के स्थान में भयावह महातुमुल (= घनघोर) शब्द हो रहा था, (यद्यपि) मुझे दान (देने) से निकाल रहे थे, फिर भी मैं दान दे रहा था ॥२५॥

हाथी, घोड़े, रथ, दासी, गौ और धन का महादान दे, उस समय मैं नगर से निकला ॥२६॥

नगर से निकल मुड़ कर देखते समय भी पृथ्वी सिनेरु-वन-माला के साथ काँप उठी ॥२७॥

चौराहे पर खड़ा हो, चार घोड़ों से युक्त रथ को दानकर अकेला हो माद्री देवी को यह कहा—॥२८॥

'माद्री ! तुम कृष्णा (-जिना) को ग्रहण करो, यह छोटी और हल्की है, इसका भाई जाली भारी है, उसे मैं ग्रहण करूँगा ॥२९॥

पद्म = पुण्डरीक के समान माद्री ने कृष्णाजिना को ग्रहण किया और मैंने सुवर्ण-बिम्ब के सदृश जाली क्षत्रिय (कुमार) को ग्रहण कर लिया ॥३०॥

अभिजाता सुखुमाला खत्तिया चतुरो जना
विसमसमं अक्कमन्ता वङ्कं गच्छाम पब्बतं ॥ ३१ ॥
ये केचि मनुजा यन्ति अनुमग्गे पटिपथे
मग्गन्ते पटिपुच्छाम कुहिं वङ्कतपब्बतो ॥ ३२ ॥
ते तत्थ अम्हे पस्सित्वा करुणं गिरमुदीरयुं
दुक्खन्ते पटिवेदेन्ति दूरे वङ्कतपब्बतो ॥ ३३ ॥
यदि पस्सन्ति पवने दारका फलिते दुमे
तेसं फलानं हेतुम्हि उपरोदन्ति दारका ॥ ३४ ॥
रोदन्ते दारके दिस्वा उब्बिधा विपुला दुमा
सयमेवोणमित्वान उपगच्छन्ति दारके ॥ ३५ ॥
इदमच्छरियं दिस्वा अब्भुतं लोमहंसनं
साधुकारं पवत्तेसि मद्दी सब्बङ्गसोभना ॥ ३६ ॥
अच्छेरं वत लोकस्मिं अब्भुतं लोमहंसनं
वेस्सन्तरस्स तेजेन सयमेवोणता दुमा ॥ ३७ ॥
संखिपिंसु पथं यक्खा अनुकम्पाय दारके
निक्खन्तदिवसेनेव चेतरट्ठमुपागमुं ॥ ३८ ॥
सट्ठिराजसहस्सानि तदा वसन्ति मातुला
सब्बे पञ्जलिका हुत्वा रोदमाना उपागमुं ॥ ३९ ॥
तत्थ वत्तेत्वा सल्लापं चेतेहि चेतपुत्तेहि
ते ततो निक्खमित्वान वङ्कं अगमुं पब्बतं ॥ ४० ॥
आमन्तयित्वा देविन्दो विस्सुकम्मं महिद्धिकं
अस्समं सुकतं रम्मं पण्णसालं सुमापय ॥ ४१ ॥
सक्कस्स वचनं सुत्वा विस्सुकम्मो महिद्धिको
अस्समं सुकतं रम्मं पण्णसालं सुमापयि ॥ ४२ ॥
अज्झोगाहेत्वा पवनं अप्पसद्दं निराकुलं
चतुरो जना मयं तत्थ वसाम पब्बतन्तरे ॥ ४३ ॥

कुलीन सुकुमार चारों जने क्षत्रिय सम-विषम पार करते वंक पर्वत को चल दिये ॥३१॥

जो कोई मनुष्य मार्ग में उधर से आते मिलते थे, उनसे मार्ग पूछते थे—'वंक पर्वत कहाँ है ?' ॥३२॥

वे हमें वहाँ देखकर करुणा-भरी वाणी बोलते थे और दुःख का अनुभव करते थे (तथा कहते थे)—'वंक पर्वत दूर है' ॥३३॥

यदि जंगल में बच्चे फले हुए वृक्षों को देखते थे तो उनके फलों के लिए रोते थे ॥३४॥

बच्चों को रोता देख ऊँचे, विशाल वृक्ष स्वयमेव झुक कर बच्चों के पास आ जाते थे ॥३५॥

इस अद्भुत, लोमहर्षक, आश्चर्यजनक बात को देखकर सर्वांग सुन्दरी माद्री ने साधुकार दिया ॥३६॥

'अहा ! लोक में आश्चर्य है ! अद्भुत और लोमहर्षक है जो कि वैश्यन्तर के तेज से स्वयमेव वृक्ष झुक गये !' ॥३७॥

बच्चों पर अनुकम्पा करके यक्षों ने मार्ग को छोटा कर दिया, (इसलिये) निकलने के ही दिन चेदिराष्ट्र पहुँच गये ॥३८॥

उस समय साठ हजार राजा मेरे मामा होते थे, सब अंजलिबद्ध रोते हुए मेरे पास आये ॥३९॥

वहाँ चेदि के राजाओं एवं राजकुमारों से बात-चीत करके, वहाँ से निकल वंक पर्वत पर गये ॥४०॥

देवेन्द्र ने महाऋद्धिमान विश्वकर्मा को सम्बोधित कर कहा—'सुन्दर, रमणीय आश्रम (-योग्य) पर्णकुटी बनाओ' ॥४१॥

महाऋद्धिमान विश्वकर्मा ने शक्र की बात सुन, सुन्दर, रमणीय आश्रम (-योग्य) पर्णकुटी बनाया ॥४२॥

अल्प-शब्द, शान्त वन में प्रवेश कर हम चारों जने वहाँ पर्वत-मध्य रहने लगे ॥४३॥

अहञ्च मद्दी देवी च जालिकण्हाजिना चुभो
अञ्ञमञ्ञं सोकनुदा वसाम अस्समे तदा ॥ ४४ ॥

दारके अनुरक्खन्तो असुञ्ञो होमि अस्समे
मद्दी फलं आहरति पोसेति सा तयो जने ॥ ४५ ॥

पवने वसमानस्स अद्धिको मं उपागमि
आयाचि पुत्तके मय्हं जालिकण्हाजिने चुभो ॥ ४६ ॥

याचकमुपगतं दिस्वा हासो मे उपपज्जथ
उभो पुत्ते गहेत्वान अदासिं ब्राह्मणे तदा ॥ ४७ ॥

सके पुत्ते चजन्तस्स याचके ब्राह्मणे यदा
तदापि पठवी कम्पि सिनेरुवनवटंसका ॥ ४८ ॥

पुनदेव सक्को ओरुय्ह हुत्वा ब्राह्मणसन्निभो
आयाचि मं मद्दिदेविं सीलवतिं पतिब्बतं ॥ ४९ ॥

मद्दिं हत्थे गहेत्वान उदकञ्जलिं पूरय
पसन्नमनसङ्कप्पो तस्स मद्दिं अदासहं ॥ ५० ॥

मद्दिया दीयमानाय गगने देवा पमोदिता
तदापि पठवी कम्पि सिनेरुवनवटंसका ॥ ५१ ॥

जालिकण्हाजिनं धीतं मद्दिदेविं पतिब्बतं
चजमानो न चिन्तेसिं बोधिया येव कारणा ॥ ५२ ॥

न मे देस्सा उभो पुत्ता मद्दी देवी न देस्सिया
सब्बञ्ञुतं पियं मय्हं तस्मा पिये अदास'हं ॥ ५३ ॥

पुनापरं ब्रहारञ्ञे मातापितु समागमे
करुणं परिदेवन्ते सल्लपन्ते सुखदुक्खं ॥ ५४ ॥

हिरोत्तप्पेन गरुना उभिन्नं उपसङ्कमि
तदापि पठवी कम्पि सिनेरुवनवटंसका ॥ ५५ ॥

उस समय मैं, माद्री देवी, जाली और कृष्णाजिना—परस्पर शोक-हटाते आश्रम में वास करते थे ॥४४॥

मैं बच्चों की देख-भाल करते आश्रम से दूर नहीं जाता था, माद्री फल लाती थी, वह तीनों जनों को पोसती थी ॥४५॥

वन में वास करते समय (एक) पथिक मेरे पास आया, और जाली एवं कृष्णाजिना दोनों बच्चों को मुझसे माँगा ॥४६॥

याचक को पास आया देख मुझे बड़ी प्रसन्नता उत्पन्न हुई, तब मैंने दोनों बच्चों को लेकर ब्राह्मण को दे दिया ॥४७॥

जब मैंने अपने दोनों बच्चों को याचक ब्राह्मण को दे दिया, तब भी पृथ्वी सिनेरु-वन-माला के साथ काँप उठी ॥४८॥

फिर शक्र ब्राह्मण-रूप धारण कर आ शीलवती, पतिव्रता माद्री देवी को मुझसे माँगा ॥४९॥

मैंने माद्री को हाथ से पकड़, अञ्जलि को जल से पूर्ण कर प्रसन्न-मन से उसे माद्री को दे दिया ॥५०॥

माद्री को देते समय आकाश में देवता प्रसन्न हो गये, तब भी पृथ्वी सिनेरु-वन-माला के साथ काँप उठी ॥५१॥

जाली, कृष्णाजिना-पुत्री और पतिव्रता माद्री देवी को त्यागते हुए बोधि (= परम ज्ञान) के ही लिए मैंने चिन्ता न की ॥५२॥

न मुझे दोनों बच्चे अप्रिय थे और न तो माद्री देवी ही अप्रिया थी, (केवल) मुझे सर्वज्ञता प्रिय थी, इसलिए मैंने प्रियों का दान दिया ॥५३॥

और फिर, विशाल वन में जब माता-पिता से भेंट हुई थी, वे करुणा-भरे शब्दों में विलाप कर रहे थे और सुख-दुःख की बातें ही हो रही थीं, मैं (अपने से बड़े होने की) लज्जा एवं संकोच से (ही) दोनों के पास गया, तब भी पृथ्वी सिनेरु-वन-माला के साथ काँप उठी ॥५४–५५॥

पुनापरं ब्रहारञ्ञा निक्खमित्वा सञ्ञातिभि
पविसामि पुरं रम्मं जेतुत्तर पुरुत्तमं ॥ ५६ ॥
रतनानि सत्त वस्सिसु महामेघो पवस्सथ
तदापि पठवी कम्पि सिनेरुवनवटंसका ॥ ५७ ॥
अचेतनायं पठवी अविञ्ञाय सुखं दुक्खं
सापि दानबला मय्हं सत्तक्खत्तुं पकम्पथाति ॥ ५८ ॥

---

१० ससपण्डितचरियं

पुनापरं यदा होमि ससको पवनचारिको
तिणपण्णसाकफलभक्खो परहेठनविवज्जितो ॥ १ ॥
मक्कटो च सिङ्गालो च उद्दपोतो चहं तदा
वसाम एकसामन्ता सायं पातो पदिस्सरे ॥ २ ॥
अहं ते अनुसासामि किरिये कल्याणपापके
पापानि परिवज्जेथ कल्याणे अभिनिस्सथ ॥ ३ ॥
उपोसथम्हि दिवसे चन्दं दिस्वान पूरितं
एतेसं तत्थ आचिक्खि दिवसो अज्जुपोसथो ॥ ४ ॥
दानानि पटियादेथ दक्खिणेय्यस्स दातवे
दत्वा दानं दक्खिणेय्यं उपवस्सथुपोसथं ॥ ५ ॥
ते मे साधूति वत्वान यथासत्ति यथाबलं
दानानि पटियादेत्वा दक्खिणेय्यं गवेसिसुं ॥ ६ ॥
अहं निसज्ज चिन्तेसिं दानं दक्खिण'नुच्छवं
यदि'हं लभे दक्खिणेय्यं किं मे दानं भविस्सति ॥ ७ ॥
न मे अत्थि तिला मुग्गा मासा वा तण्डुला घतं
अहं तिणेन यापेमि न सक्का तिणदातवे ॥ ८ ॥

और फिर, विशाल वन से अपने सम्बन्धियों के साथ निकलकर (जब) रम्य एवं श्रेष्ठ जेत्तोत्तर नगर में प्रवेश कर रहा था, तब सात रत्नों की वर्षा हुई, महामेघ (भी) वर्षा; तब भी पृथ्वी सिनेरु-वन-माला के साथ काँप उठी ॥५६–५७॥

सुख-दुःख को न जानती हुई यह अचेतन पृथ्वी भी मेरे दान के बल से सात बार काँप उठी ॥५८॥

---

१०. शशपण्डित चर्या

और फिर, जब मैं वन में विचरण करने वाला, तृण के पत्तों, साग और फल को खाने वाला, दूसरे को पीड़ित करने से रहित शशक (=खर-गोश) हुआ था ॥१॥

तब बन्दर, गीदड़, ऊदबिलाव और मैं एक प्रदेश में रहते थे और सायं प्रातः मिलते थे ॥२॥

मैं भले-बुरे कर्मों में उनका अनुशासन करता था—'पापों को त्यागो, पुण्य-कर्मों में लगो' ॥३॥

उपोसथ[१०] के दिन पूर्णचन्द्र को देखकर, मैंने उनसे कहा—'आज उपोसथ का दिन है ॥४॥

दाक्षिणेय को देने के लिये दान तैयार करो, और दाक्षिणेय को दान देकर उपोसथ (-व्रत) रहो' ॥५॥

वे मुझे 'बहुत अच्छा' कह यथाशक्ति, यथाबल दान (की वस्तुओं) को तैयार कर दाक्षिणेय खोजने लगे ॥६॥

मैं बैठकर दान देने योग्य दाक्षिणेय का विचार करने लगा,—"यदि मैं दाक्षिणेय को पाऊँगा, तो क्या दान होगा ॥७॥

न मुझे तिल है, न मूँग, उरद, चावल और घी है, मैं तृण से यापन करता हूँ, तृण नहीं दिया जा सकता ॥८॥

यदि कोचि एति दक्खिणेय्यो भिक्खाय मम सन्तिके
दज्जाहं सकमत्तानं न सो तुच्छो गमिस्सति ॥ ९ ॥
मम सङ्कप्पमञ्ञाय सक्को ब्राह्मणवण्णिना
आसयं मे उपागञ्छि दानवीमंसनाय मे ॥ १० ॥
तमहं दिस्वान सन्तुट्ठो इदं वचनमब्रविं
साधु खो'सि अनुपत्तो घासहेतु ममन्तिके ॥ ११ ॥
अदिन्नपुब्बं दानवरं अज्ज दस्सामि ते अहं
तुवं सीलगुणूपेतो अयुत्तं ते परहेठनं ॥ १२ ॥
एहि अग्गिं पदीपेहि नानाकट्ठे समानय
अहं पचिस्समत्तानं पक्कं त्वं भक्खयिस्ससीति ॥ १३ ॥
साधू'ति सो हट्ठमनो नानाकट्ठे समानयि
महन्तं अकासि चितकं कत्वान'ङ्गारगब्भकं ॥ १४ ॥
अग्गिं तत्थ पदीपेसि यथा सो खिप्पं महाभवे
फोटेत्वा रजगते गत्ते एकमन्तं उपाविसिं ॥ १५ ॥
यदा महा कट्ठपुञ्जो आदित्तो धुमधुमायति
तदुप्पतित्वा पपतिं मज्झे जालसिखन्तरे ॥ १६ ॥
यथा सीतोदकं नाम पविट्ठं यस्सकस्सचि
समेति दरथं परिलाहं अस्सादं देति पीति च ॥ १७ ॥
तथेव जलितं अग्गिं पविट्ठस्स ममं तदा
सब्बं समेति दरथं यथा सीतोदकं विय ॥ १८ ॥
छविचम्मं मंसं नहारुं अट्ठिं हदयबन्धनं
केवलं सकलं कायं ब्राह्मणस्स अदासहं'न्ति ॥ १९ ॥

यदि कोई दाक्षिणेय भिक्षा के लिये मेरे पास आयेगा, तो मैं अपने ही को दे दूँगा, वह तुच्छ न जायेगा' ॥९॥

मेरे संकल्प को जानकर शक्र ब्राह्मण-रूप से मेरे दान की परीक्षा करने के लिये वासस्थान पर आया ॥१०॥

उसे देख मैंने सन्तुष्ट हो यह बात कही—'बहुत अच्छा है, जो कि भोजन के लिए मेरे पास आये हैं ॥११॥

आज मैं पहले न दिया गया श्रेष्ठ दान आपको दूँगा, किन्तु आप शील-गुण से युक्त हैं, दूसरे को पीड़ित करना आपको योग्य नहीं ॥१२॥

आइये, नाना काष्ठों को लाकर आग जलाइये, मैं अपने को पकाऊँगा, आप (मुझ) पके को खाइयेगा' ॥१३॥

'बहुत अच्छा' कह, वह प्रसन्न-मन से नाना काष्ठों को लाया, भीतर अंगार भरी विशाल चिता बनाया ॥१४॥

आग को ऐसे जलाया, जैसे कि वह शीघ्र महा हो जाय, मैं शरीर की धूल को झाड़कर एक ओर बैठ गया ॥१५॥

जब महाकाष्ठ-पुञ्ज प्रज्वलित हो धधक उठा। तब मैं कूदकर आग की लपट के मध्य गिर पड़ा ॥१६॥

जैसे जिस किसी के शीतल जल में प्रवेश करने पर थकान और जलन शान्त हो जाती है, आस्वाद तथा प्रीति प्राप्त होती है, वैसे ही उस समय जलती हुई आग में मुझे प्रवेश करने पर शीतल जल की भाँति सब थकान शान्त हो गई ॥१७–१८॥

(उस समय) मैंने छवि, चर्म, मांस, स्नायु, हड्डी, कलेजा और सम्पूर्ण शरीर को (ही) ब्राह्मण को दे दिया ॥१९॥

उदानं

अकित्ति ब्राह्मणो सङ्खो कुरुराजा धनञ्जयो
महासुदस्सनो राजा महागोविन्दब्राह्मणो ॥ २० ॥
निमि चन्दकुमारो च सिवि वेस्सन्तरो ससो
अहमेव तदा आसिं यो ते दानवरे अदा ॥ २१ ॥
एते दानपरिक्खारा एते दानस्स पारमी
जीवितं याचके दत्वा इमं पारमिं पूरयिं ॥ २२ ॥
भिक्खायुपगतं दिस्वा सकत्तानं परिच्चजिं
दानेन मे समो नत्थि एसा मे दानपारमीति ॥ २३ ॥

॥ दानपारमिता निट्ठिता ॥

उदान

अकीर्ति ब्राह्मण, शंख, कुरुराजा धनंजय, राजा महासुदर्शन, महागोविन्द ब्राह्मण, निमि, चन्द्रकुमार, शिवि, वैश्यन्तर और शश—मैं ही उस समय था, जिसने कि उन श्रेष्ठ दानों को दिया ॥२०–२१॥

ये दान के परिष्कार हैं, ये दान की पारमिता हैं, मैंने याचकों को जीवन देकर इस पारमिता को पूर्ण किया ॥२२॥

भिक्षा के लिए आया हुआ देख मैंने अपने आप को त्याग दिया। मेरे समान दान (देने) में कोई नहीं है, यह मेरी दान-पारमिता है ॥२३॥

॥ दानपारमिता समाप्त ॥

दुतियो परिच्छेदो

सीलपारमिता

१. सीलवनागचरियं

यदा अहोसिं पवने कुञ्जरो मातुपोसको
न तदा अत्थि महिया गुणेन मम सादिसो ॥ १ ॥

पवने दिस्वा वनचरो रञ्ञो मं पटिवेदयि
तवनुच्छवो महाराज ! गजो वसति कानने ॥ २ ॥

न तस्स परिक्खायत्थो नपि आलककासुया
समागहिते सोण्डाय सयमेव इधेहिति ॥ ३ ॥

तस्स तं वचनं सुत्वा राजापि तुट्ठमानसो
पेसेसि हत्थिदमकं छेकाचरियं सुसिक्खितं ॥ ४ ॥

गन्त्वान सो हत्थिदमको अद्दस पदुमस्सरे
भिस मुलालं उद्धरन्तं यापनत्थाय मातुया ॥ ५ ॥

विञ्ञाय मे सीलगुणं लक्खणं उपधारयि
एहि पुत्तति वत्वान मम सोण्डाय अग्गहि ॥ ६ ॥

यम्मे तदा पाकतिकं सरीरानुगतं बलं
अज्ज नागसहस्सानं बलेन समसादिसं ॥ ७ ॥

यदि'हं तेसं पकुप्पेय्यं उपेतं गहणाय मं
पटिबलो भवे तेसं याव रज्जम्पि मानुसं ॥ ८ ॥

अपि चाहं सीलरक्खाय सीलपारमिपूरिया
न करोमि चित्ते अञ्ञथत्तं पक्खिपन्तं ममालके ॥ ९ ॥

दूसरा परिच्छेद

२. शील-पारमिता

१. शीलवनाग चर्या

जब मैं जंगल में माता को पालने वाला हाथी हुआ था, तब पृथ्वी पर गुण में मेरे समान कोई न था ॥१॥

बहेलिये ने मुझे जंगल में देखकर राजा से कहा—'महाराज! आपके योग्य हाथी जंगल में रहता है ॥२॥

उसके लिए न खाई की जरूरत है, न फँसरी और न गड्ढे की ही; सूँड़ से पकड़ने पर स्वयं ही यहाँ आ जायेगा' ॥३॥

उसके उस वचन को सुनकर राजा ने भी प्रसन्न-मन हो, हाथी को दमन करने वाले सुशिक्षित दक्ष-आचार्य (=महावत) को भेजा ॥४॥

उस हाथी को दमन करने वाले ने जाकर, माता के निर्वाह के लिए कमल वाले जलाशय में भिषाण (=कमल-जड़) को उखाड़ते हुए देखा ॥५॥

(उसने) मेरे शील-गुण को जानकर लक्षण का विचार किया (और) 'पुत्र ! आ !' कह कर मुझे सूँड़ से पकड़ लिया ॥६॥

उस समय मेरे शरीर में जो स्वाभाविक बल था, (वह) आजकल के हजार-हाथी के बल के समान था ॥७॥

मुझे पकड़ने के लिए आये हुए, उन लोगों पर यदि मैं क्रोध करता, तो उनके राज्य भर के मनुष्यों तक को भी नष्ट कर देता ॥८॥

किन्तु, मैंने शील की रक्षा और शील का पालन करने के लिए अपने ऊपर फँसरी फेंकते हुए भी चित्त में विकार (= अन्यथा-भाव) नहीं आने दिया ॥९॥

यदि ते मं तत्थ कोट्टेय्युं फरसूहि तोमरेहि च
नेव तेसं पकुप्पेय्यं सीलखण्डभया ममाति ॥ १० ॥

---

२. भूरिदत्तचरियं

पुनापरं यदा होमि भूरिदत्तो महिद्धिको
विरूपक्खेन महारञ्ञा देवलोकमगञ्छहं ॥ १ ॥
तत्थ पस्सित्वाहं देवे एकन्तं सुखसमप्पिते
तं मग्गं गमनत्थाय सीलब्बतं समादयिं ॥ २ ॥
सरीरकिच्चं कत्वान भुत्वा यापनमत्तकं
चतुरो अङ्गे अधिट्ठाय सेमि वम्मिकमुद्धनि ॥ ३ ॥
छविया चम्मेन मंसेन नहारु-अट्ठिकेहि च
यस्स एतेन करणीयं दिन्नं येव हरातु सो ॥ ४ ॥
संसितो अकतञ्ञुना आलम्बानो ममग्गहि
पेलाय पक्खिपेत्वान कीलेति मं तहिं तहिं ॥ ५ ॥
पेलाय पक्खिपेन्तेपि सम्मद्दन्तेपि पाणिना
आलम्बाने न कुप्पामि सीलखण्डभया मम ॥ ६ ॥
सकजीवितपरिच्चागो तिणतो लहुको मम
सीलवीतिक्कमो मय्हं पठवी उप्पत्तनं विय ॥ ७ ॥
निरन्तरं जातिसतं चजेय्यं मम जीवितं
नेव सीलं पभिन्देय्यं चतुदीपान हेतुपि ॥ ८ ॥
अपि चाहं सीलरक्खाय सीलपारमिपूरिया
न करोमि चित्ते अञ्ञथत्तं पक्खिपन्तम्पि पेलके'ति ॥ ९ ॥

यदि वे मुझे वहाँ फरसों और तोमरों से काट डालते, तो भी मैं अपने शील के खण्डित होने के भय से उनपर क्रोध नहीं करता ॥१०॥

---

२. भूरिदत्त चर्या

और फिर, जब मैं महाऋद्धिमान भूरिदत्त (नामक सर्प) हुआ था, तब मैं विरूपाक्ष[११] महाराज के साथ देवलोक गया ॥१॥

वहाँ मैंने एकदम सुख में लीन देवताओं को देखकर, उस मार्ग पर चलने के लिए शील-व्रत को ग्रहण किया ॥२॥

शरीर-कृत्य करके, निर्वाह मात्र के लिए खा, चार बातों का अधिष्ठान कर वल्मीकि के ऊपर सोता था ॥३॥

'छवि (= झिल्ली), चर्म, मांस, स्नायु (= नस) और हड्डी—इनका जिसे प्रयोजन हो, वह ले जाये, मैंने दे ही दिया' ॥४॥

अकृतज्ञ (नैषाद ब्राह्मण) द्वारा बतलाने पर सँपेरे ने मुझे पकड़ लिया। (वह) मुझे झपोले में रखकर स्थान-स्थान पर खेलाता था ॥५॥

झपोले में डालते हुए भी, हाथ से मलते हुए भी, मैं शील के खण्डित होने के डर से सँपेरे पर क्रोध नहीं करता ॥६॥

मुझे अपने जीवन का त्याग तृण से भी लघु था, किन्तु शील का अतिक्रमण मुझे पृथ्वी उलटने के समान था ॥७॥

लगातार सौ जन्मों तक मैं अपने जीवन को त्याग देता, किन्तु चारों द्वीपों के लिए भी शील को न तोड़ता ॥८॥

मैं शील की रक्षा और शील को पूर्ण करने के लिए ही झपोले में डालते हुए चित्त में विकार (= अन्यथा-भाव) नहीं आने देता ॥९॥

---

३. चम्पेय्यनाग-चरियं

पुनापरं यदा होमि चम्पेय्यको महिद्धिको
तदापि धम्मिको आसिं सीलब्बतसमप्पितो ॥ १ ॥
तदापि मं धम्मचारिं उपवुट्ठं उपोसथं
अहिकुण्डिको गहेत्वान राजद्वारम्हि कीलति ॥ २ ॥
यं सो वण्णं चिन्तयति नीलपीतं व लोहितं
तस्स चित्तानुवत्तन्तो होमि चिन्तितसन्निभो ॥ ३ ॥
थलं करेय्यं उदकं उदकम्पि थलं करे
यदि'हं तस्स पकुप्पेय्यं खणेन छारिकं करे ॥ ४ ॥
यदि चित्तवसी हेस्सं परिहायिस्सामि सीलतो
सीलेन परिहीनस्स उत्तमत्थो न सिज्झति ॥ ५ ॥
कामं भिज्जतु यं कायो इधेव विकिरीयतु
ने'व सीलं पभिन्देय्यं विकिरन्ते भुसं विया'ति ॥ ६ ॥

---

४. चूलबोधि-चरियं

पुनापरं यदा होमि चूलबोधि सुसीलवा
भवं दिस्वान भयतो नेक्खम्मं अभिनिक्खमिं ॥ १ ॥
या मे दुतियिका आसि ब्राह्मणी कनकसन्निभा
सा विवट्टे अनपेक्खा नेक्खम्मं अभिनिक्खमि ॥ २ ॥
निरालया छिन्नबन्धू अनपेक्खा कुले गणे
चरन्ता गामनिगमं बाराणसिमुपागमुं ॥ ३ ॥
तत्थ वसाम निपका असंसट्ठा कुले गणे
निराकुले अप्पसद्दे राजुय्याने वसामुभो ॥ ४ ॥

३. चम्पेय्यनाग चर्या

और फिर, जब मैं महाऋद्धिमान चम्पेय्यक (नामक सर्पराज) हुआ था, उस समय भी मैं धार्मिक और शील-व्रत में लीन था ॥१॥

उस समय भी मुझ धर्मचारी को उपोसथ व्रत करते हुए, सँपेरा पकड़ कर राज-द्वार पर खेलाता था ॥२॥

वह नीला, पीला या लाल—जिस भी रंग का विचार करता, मैं उसके चित्त के अनुसार ही विचारे हुए रंग का हो जाता था ॥३॥

मैं स्थल को जल करता और जल को भी स्थल। यदि मैं उसपर क्रोध करता तो क्षण भर में ही राख कर देता ॥४॥

यदि मैं चित्त का वशी (= स्वेच्छाचारी) होऊँगा, तो शील से हीन हो जाऊँगा और शील से हीन का उत्तमार्थ नहीं सिद्ध होता ॥५॥

चाहे यह शरीर भग्न हो जाय, यहीं बिखर जाय, भूसा के समान बिखरते हुए भी मैं शील को नहीं तोड़ूँगा ॥६॥

---

४. चूलबोधि चर्या

और फिर, जब मैं शीलवान चूलबोधि हुआ था, (तब) संसार को भय के तौर पर देखकर घर-बार छोड़कर निकल पड़ा ॥१॥

जो मेरी सुवर्ण-वर्णा ब्राह्मणी स्त्री थी, वह (भी) संसार में आसक्ति-रहित हो घर-बार छोड़कर निकल पड़ी ॥२॥

(हम दोनों) आसक्ति-रहित, बन्धुओं से नाता तोड़, कुल और संघ के प्रति अनिच्छुक हो गाँव, कस्बा में विचरण करते हुए वाराणसी पहुँचे ॥३॥

वहाँ हम दोनों बुद्धिमान कुल और संघ में संसर्ग-रहित हो निर्द्वन्द्व, अल्प-शब्द (= शान्त) राजोद्यान में रहते थे ॥४॥

उय्यानदस्सनं गन्त्वा राजा अद्दस ब्राह्मणिं
उपगम्म ममं पुच्छि तुय्हेसा कस्स भरियाति ॥ ५ ॥
एवं वुत्ते अहं तस्स इदं वचनमब्रविं
न मय्हं भरिया एसा सहधम्मा एकसासनी ॥ ६ ॥
तस्सा सारत्ताधिगतो गाहापेत्वान चेतके
निप्पीलयन्तो बलसा अन्तेपुरं पवेसयि ॥ ७ ॥
ओदपत्तिकिया मय्हं सहजा एकसासनी
आकड्ढित्वान यन्तिया कोपो मे उपपज्जथ ॥ ८ ॥
सह कोपे समुप्पन्ने सीलब्बतमनुस्सरिं
तत्थेव कोपं निग्गण्हिं नादासिं वड्ढितुपरि ॥ ९ ॥
यदि नं ब्राह्मणिं कोचि कोट्टेय्य तिण्हसत्तिया
नेव सीलं पभिन्देय्यं बोधिया येव कारणा ॥ १० ॥
न मे सा ब्राह्मणी देस्सा नपि मे बलं न विज्जति
सब्बञ्ञुतं पियं मय्हं तस्मा सीलानुरक्खिस्सन्ति ॥ ११

---

९. महिसराज-चरियं

पुनापरं यदा होमि महिसो वनचारको
पवड्ढकायो बलवा महन्तो भीमदस्सनो ॥ १ ॥
पब्भारे गिरिदुग्गे च रुक्खमूले दकासये
होतेत्थ ठानं महिसानं कोचि कोचि तहिं तहिं ॥ २ ॥
विचरन्तो ब्रहारञ्ञे ठानं अद्दस भद्दकं
तं ठानं उपगन्त्वान तिट्ठामि च सयामि च ॥ ३ ॥

राजा ने उद्यान-दर्शन के लिए जाकर ब्राह्मणी को देखा, (और) मेरे पास आकर पूछा—'यह तेरी है? किसकी स्त्री है?' ॥५॥

उसके ऐसा कहने पर मैंने यह कहा—'यह मेरी स्त्री नहीं है, (प्रत्युत) यह सह-धर्मिणी (= एक धर्म मानने वाली) और एक शासन (= धर्म) में रहने वाली है' ॥६॥

उस पर अत्यधिक आसक्त हो, राजपुरुषों से पकड़वाकर बलपूर्वक पीड़ित करते (= जबरदस्ती) अन्तःपुर में प्रवेश कराया ॥७॥

एक साथ प्रव्रजित हुई, एक शासन में रहनेवाली मेरी स्त्री को खींचकर ले जाते हुए मुझे क्रोध उत्पन्न हो आया ॥८॥

क्रोध के उत्पन्न होने के साथ ही मैंने शील-व्रत का स्मरण किया, वहीं क्रोध को दबा दिया (उसे) आगे बढ़ने नहीं दिया ॥९॥

यदि कोई उस ब्राह्मणी को तेज हथियार (= शक्ति) से भी काटे, तो भी बोधि (= परम ज्ञान) के लिए ही मैं शील को नहीं तोड़ूँगा ॥०१॥

न तो मुझे वह ब्राह्मणी अप्रिय है और न कि मुझमें बल नहीं है, मुझे सर्वज्ञता प्रिय है, इसलिए मैं शील का पालन करूँगा ॥११॥

---

५. महिषराज चर्या

और फिर, जब मैं वृहत्काय, बलवान, महान और भयानक जंगली भैंसा हुआ था ॥१॥

झुके हुए पर्वत के नीचे, पर्वत की गुफा में, वृक्षों के नीचे और जलाशय के पास—वहाँ-वहाँ भैंसों के लिए कोई-कोई (वास-) स्थान होता है ॥२॥

विशाल जंगल में विचरण करते हुए (एक) सुन्दर स्थान को देखा, उस स्थान में जाकर खड़ा होता और सोता था ॥३॥

अथेत्थ कपिमागन्त्वा पापो अनरियो लहु
खन्धे नलाटे भमुके मुत्तेति ओहनेति तं ॥ ४ ॥
सकिम्पि दिवसं दुतियं ततियं चतुत्थम्पि च
दूसेति मं सब्बकालं तेन होमि उपद्दुतो ॥ ५ ॥
ममं उपद्दुतं दिस्वा यक्खो मं इदमब्रवि
नासेहेतं छवं पापं सिङ्गेहि च खुरेहि च ॥ ६ ॥
एवं वुत्ते तदा यक्खे अहं तं इदमब्रविं
किं त्वं मक्खेसि कुणपेन पापेन अनरियेन मं ॥ ७ ॥
यदिहं तस्स कुप्पेय्यं ततो हीनतरो भवे
सीलञ्च मे पभिज्जेय्य विञ्ञू च गरहेय्युं मं ॥ ८ ॥
हीलिता जीविता वापि परिसुद्धेन मतं वरं
क्याहं जीवितहेतुपि काहामि परहेठनं ॥ ९ ॥
मं एवायं मञ्ञमानो अञ्ञेपेवं करिस्सति
ते वे तत्थ वधिस्सन्ति सा मे मुत्ति भविस्सति ॥ १० ॥
हीनमज्झिमउक्कट्ठे सहन्तो अवमानितं
एवं लभति सप्पञ्ञो मनसा यथा पत्थितन्ति ॥ ११ ॥

---

६. रुरुराज-चरियं

पुनापरं यदा होमि सुतत्तकनकसन्निभो
मिगराजा रुरु नाम परमसीलसमाहितो ॥ १ ॥
रम्मे पदेसे रम्मणीये विवित्ते अमनुस्सके
तत्थ वासं उपागच्छिं गङ्गाकूले मनोरमे ॥ २ ॥
अथ उपरि गङ्गाय धनिकेहि परिपीलितो
पुरिसो गङ्गाय पपति जीवामि वा मरामि वा ॥ ३ ॥

वहाँ (एक) पापी, अ-शिष्ट (= अनार्य), चंचल बन्दर आकर
मेरे कन्धे, ललाट और भौं पर पेशाब तथा पाखाना करता था ॥४॥
दिन में एक बार भी, दो, तीन और चार बार भी—सारे समय
मुझे दूषित करता था, उससे मैं परेशान था ॥५॥
मुझे परेशान देखकर (वृक्ष-) देवता ने मुझे यह कहा—'इस मुर्दे,
पापी को सींगों और खुरों से नष्ट कर दो' ॥६॥
तब देवता के ऐसा कहने पर मैंने उसे यह कहा—'क्यों तुम मुझे
मुर्दे, पापी, अ-शिष्ट (= अनार्य) से क्रोध (= म्रक्ष) करा रहे हो ?॥७॥
यदि मैं उस पर क्रोध करूँ तो मैं उससे भी बोच हो जाऊँ मेरा
शील टूट जाय और विज्ञ लोग मेरी निन्दा करें ॥८॥
निन्दित जीवन से परिशुद्ध रहकर मर जाना श्रेष्ठ है, क्या मैं जीवन
के लिए दूसरे को पीड़ित करूँगा ? ॥९॥
यह दूसरों को भी मुझे ही समझ ऐसा करेगा, वे ही इसे मार डालेंगे,
इस प्रकार मुझे छुटकारा मिल जायेगा ॥१०॥
हीन, मध्यम और उत्तम अपमान को सहता हुआ प्रज्ञावान व्यक्ति
इसी प्रकार मन-चाहे हुए को प्राप्त करता है' ॥११॥

---

६. रुरुराज चर्या

और फिर, जब मैं परमशील से युक्त भली प्रकार तपाये हुए सोने
के समान रुरु नामक मृगराज हुआ था ॥१॥
मैं गंगा के किनारे सुन्दर, रमणीय, एकान्त, मनुष्य-रहित और
मनोहर प्रदेश में वास करता था ॥२॥
तब धनिकों से पीड़ित एक आदमी गंगा के ऊपरी भाग में 'जीऊँ
या मरूँ' (सोच) गंगा में कूद पड़ा ॥३॥

रत्तिं दिवं सो गङ्गाय वुय्हमानो महोदके
रवन्तो करुणं रवं मज्झे गङ्गाय गच्छति ॥ ४ ॥
तस्साहं सद्दं सुत्वान करुणं परिदेवतो
गङ्गाय तीरे ठत्वान अपुच्छि कोसि त्वं नरो ॥ ५ ॥
सो मे पुट्ठो च व्याकासि अत्तनो कारणं तदा
धनिकेहि भीतो तसितो पक्खन्दोहं महानदिं ॥ ६ ॥
तस्स कत्वान कारुञ्ञं चजित्वा मम जीवितं
पविसित्वा नीहरिन्तस्स अन्धकारम्हि रत्तिया ॥ ७ ॥
अस्सत्त कालमञ्ञाय तस्साहमिदमब्रविं
एकन्तं वरं याचामि मा मं कस्सचि पावद ॥ ८ ॥
नगरं गत्वान आचिक्खि पुच्छितो धनहेतुको
राजानं सो गहेत्वान उपगञ्छि ममन्तिकं ॥ ९ ॥
यावता कारणं सब्बं रञ्ञो आरोचितं मया
राजा सुत्वान वचनं उसुं तस्स पकप्पयि
इधेव घातयिस्सामि मित्तदुब्भिमनरियं ॥ १० ॥
तमहं अनुरक्खन्तो निम्मिनिं मम अत्तना
तिट्ठतेसो महाराज ! कामङ्करो भवामि ते ॥ ११ ॥
अनुरक्खिं मम सीलं नारक्खिं मम जीवितं
सीलवा हि तदा आसिं बोधिया येव कारणा ॥ १२ ॥

---

७. मातङ्ग-चरियं

पुनापरं यदा होमि जटिलो उग्गतापनो
मातङ्गो नाम नामेन सीलवा सुसमाहितो ॥ १ ॥
अहञ्च ब्राह्मणो एको गङ्गाकूले वसामुभो
अहं वसामि उपरि, हेट्ठा वसति ब्राह्मणो ॥ २ ॥

वह रात दिन गंगा के महा-जल में बहता हुआ, करुणा-भरे शब्दों को करता गंगा के बीच जा रहा था ॥४॥

मैंने करुणा-भरे विलाप करते उसके शब्द को सुनकर गंगा के किनारे खड़ा हो पूछा—'तू कौन आदमी है?' ॥५॥

तब उसने मेरे पूछने पर अपनी बात कह सुनायी—'मैं धनिकों से भयभीत, त्रसित हो महानदी में कूद पड़ा हूँ' ॥६॥

मैंने उस पर करुणा कर, अपने जीवन को त्याग, अन्धेरी रात्रि में (जल में) प्रवेश कर उसे निकाला ॥७॥

स्वस्थ हुआ जान मैंने उसे यह कहा—'मैं तुझसे एक वर माँगता हूँ, किसी को भी मुझे मत बतलाना' ॥८॥

उसने नगर में जाकर पूछने पर धन के लिए बतला दिया (और) राजा को लेकर मेरे पास आया ॥९॥

जो कुछ बात थी, मैंने सब राजा को कह सुनायी, राजा ने (मेरी) बात सुन उस पर बाण ताना—'मित्र-द्रोही, अनार्य को यहीं मार डालूँगा' ॥१०॥

मैंने उसे बचाते हुए स्वयं अपने को निशाना बनाया—'महाराज! यह रहे, मैं तेरा काम करनेवाला होऊँगा' ॥११॥

मैंने अपने शील की रक्षा की, अपने जीवन की रक्षा न की। बोधि के लिए ही मैं उस समय शीलवान था ॥१२॥

---

७. मातङ्ग चर्या

और फिर, जब मैं शीलवान, एकाग्र-चित्त जटाधारी मातङ्ग नामक महातपस्वी हुआ था ॥१॥

(तब) मैं और एक ब्राह्मण—हम दोनों गंगा के किनारे रहते थे। मैं ऊपर रहता था और ब्राह्मण नीचे रहता था ॥२॥

विचरन्तो अनुकूलम्हि उद्धं मे अस्समद्दस
तत्थ मं परिभासेत्वा अभिसपि मुद्धफालनं ॥ ३ ॥
यदिहं तस्स कुप्पेय्यं यदि सीलं न गोपये
ओलोकेत्वानहं तस्स करेय्यं छारिकं विय ॥ ४ ॥
यं सो तदा मं अभिसपि कुपितो दुट्ठमानसो
तस्सेव मत्थके निपति योगेन तं पमोचयिं ॥ ५ ॥
अनुरक्खि मम सीलं नारक्खि मम जीवितं
सीलवा हि तदा आसिं बोधिया येव कारणा 'ति ॥ ६ ॥

---

८. धम्मदेवपुत्त-चरियं

पुनापरं यदा होमि महायक्खो महिद्धिको
धम्मो नाम महायक्खो सब्बलोकानुकम्पको ॥ १ ॥
दसकुसलकम्मपथे समादपेन्तो महाजनं
चरामि गामनिगमं समित्तो सपरिज्जनो ॥ २ ॥
पापो कदरियो यक्खो दीपेन्तो दस पापके
सो पेत्थ महिया चरति समित्तो सपरिज्जनो ॥ ३ ॥
धम्मवादी अधम्मो च उभो पच्चनिका मयं
धुरे धुरं घट्टयन्ता समिम्हा पटिपथे उभो ॥ ४ ॥
कलहो वत्तति अस्मा कल्याणपापकस्स च
मग्गा ओक्कमनत्थाय महायुद्धो उपट्ठितो ॥ ५ ॥
यदिहं तस्स पकुप्पेयं यदि भिन्दे तपोगुणं
सह परिजनन्तस्स रजभूतं करेय्यहं ॥ ६ ॥
अपि चाहं सील-रक्खाय निब्बापेत्वान मानसं
सह जनेन ओक्कमित्वा पथं पापस्सदासहं ॥ ७ ॥

(उसने) किनारे-किनारे विचरण करते ऊपर मेरे आश्रम को देखा (और) वह मुझे गाली देकर सिर फट जाने के लिए अभिशाप दिया ॥३॥

यदि मैं उस पर क्रोध करता, यदि मैं शील की रक्षा न करता, तो मैं देखकर (ही) उसे राख के समान कर देता ॥४॥

उस समय जो उसने क्रोधित हो बुरे मन से मुझे अभिशाप दिया, वह उसी के सिर पर पड़ा (किन्तु) मैंने उसे उपाय से छुड़ाया ॥५॥

मैंने अपने शील की रक्षा की, अपने जीवन की रक्षा न की। बोधि के लिए ही मैं उस समय शीलवान था ॥६॥

---

८. धर्मदेवपुत्र चर्या

और फिर, जब मैं सारे लोक पर अनुकम्पा करने वाला, महाऋद्धिमान 'धर्म' नामक महायक्ष हुआ था ॥१॥

(तब) मैं अपने मित्र और परिवार के साथ जनता को दस कुशल कर्मपथों[१२] को ग्रहण कराता गाँवों और कस्बों में विचरण करता था ॥२॥

पापी, कंजूस यक्ष भी अपने मित्र और परिवार के साथ दस[१३] पापों को बतलाता हुआ इस पृथ्वी पर विचरण करता था ॥३॥

हम दोनों एक दूसरे के विरोधी धर्मवादी और अधर्मवादी धुरे से धुरे को टकराते हुए एक ही मार्ग में आमने-सामने मिले ॥४॥

हम पुण्यात्मा और पापी दोनों में झगड़ा होने लगा। मार्ग से हटने के लिए महायुद्ध उपस्थित हो गया ॥५॥

यदि मैं उस पर क्रोध करता और यदि मैं (अपने) तपोगुण को तोड़ देता, तो मैं उसे परिवार के साथ धूल कर देता ॥६॥

किन्तु, मैंने शील की रक्षा के लिए मन को शान्त कर, अपने जनों के साथ मार्ग से हट कर पापी को मार्ग दे दिया ॥७॥

सह पथतो ओक्कन्तो कत्वा चित्तस्स निब्बुतिं
विवरं अदासि पठवी पापयक्खस्स तावदे'ति ॥ ८ ॥

---

९. जयद्दिस-चरियं

पञ्चालरट्ठे नगरे कम्पिलायं पुरुत्तमे
राजा जयद्दिसो नाम सीलगुणमुपागतो ॥ १ ॥
तस्स रञ्ञो अहं पुत्तो सुतधम्मो सुसीलवा
अलीनसत्तो गुणवा अनुरक्ख परिज्जनो ॥ २ ॥
पिता मे मिगवं गन्त्वा पोरिसादमुपागमि
सो मे पितुमग्गहेसि भक्खोसि मम मा चलि ॥ ३ ॥
तस्स तं वचनं सुत्वा भीतो तसितवेधितो
ऊरुथम्भो अहु तस्स दिस्वान पोरिसादकं ॥ ४ ॥
मिगवं गहेत्वा मुञ्चस्सु कत्वा आगमनं पुन
ब्राह्मणस्स धनं दत्वा पिता आमन्तयि ममं ॥ ५ ॥
रज्जं पुत्त पटिपज्ज मा पमज्जि पुरं इदं
कतं मे पोरिसादेन मम आगमनं पुन ॥ ६ ॥
मातापितु च वन्दित्वा निम्मिनित्वान अत्तानं
निक्खिपेत्वा धनुखग्गं पोरिसादं उपागमिं ॥ ७ ॥
ससत्थहत्थुपगतं कदाचि सो तसिस्सति
तेन भिज्जिस्सति सीलं परित्तासं कते मयि ॥ ८ ॥
सीलखण्डभया मय्हं तस्स देस्सं न ब्याहरिं
मेत्तचित्तो हितवादी इदं वचनमब्रविं ॥ ९ ॥

चित्त को शान्त करके मार्ग से हटने के साथ ही उसी क्षण पापी यक्ष के लिए पृथ्वी ने विवर (= छेद) दे दिया ॥८॥

---

९. जयद्दिस चर्या

पाञ्चाल राष्ट्र में नगरों में उत्तम कम्पिल नगर[१४] में शील-गुण से युक्त जयद्दिस नामक राजा था ॥१॥

मैं उस राजा का बहुश्रुत, शीलवान, गुणवान, अपने लोगों की रक्षा करनेवाला अलीनसत्त नामक पुत्र था ॥२॥

मेरा पिता शिकार को जा, मनुष्य-भक्षक यक्ष (= पोरिषाद) के पास पहुँच गया, उसने मेरे पिता को पकड़ लिया—'तू मेरा भक्ष्य है, मत इधर-उधर जा' ॥३॥

उस मनुष्य-भक्षक यक्ष (= पोरिषाद) को देख और उसकी उस बात को सुन वह भयभीत, त्रसित, कम्पित और स्तम्भित (= खम्भे के समान निश्चल = जड़) हो गया ॥४॥

'शिकार को लेकर मुझे फिर आने के लिए प्रतिज्ञा कराकर छोड़ दो।' ब्राह्मण को धन देकर पिता ने मुझे आमन्त्रित किया ॥५॥

'पुत्र ! राज्य को सम्हालो, इस नगर के लिए प्रमाद मत करना, मैंने मनुष्य-भक्षक यक्ष (= पोरिषाद) से फिर आने के लिए प्रतिज्ञा की है ॥६॥

मैं (स्वयं) माता और पिता को प्रणाम् कर अपने को निमित्त बना, धनुष और खड्ग को त्याग मनुष्य-भक्षक यक्ष के पास गया ॥७॥

'कदाचित् हथियार को हाथ में लेकर जाने पर वह डर जायेगा, (और) मेरे द्वारा डराये जाने पर मेरा शील टूट जायेगा ॥८॥

अपने शील को खण्डित होने के डर से उसे अप्रिय वचन न कहा, मैत्री-चित्तवाला तथा हितैषी हो मैंने यह बात कही ॥९॥

उज्जलेहि महाअग्गिं पपतिस्सामि रुक्खतो
सम्पत्तकालमञ्ञाय भक्खय त्वं पितामह ॥ १० ॥
इति सीलवतं हेतु नारक्खि मम जीवितं
पब्बाजेसिं चहन्तस्स सदा पाणातिपातिकं ॥ ११ ॥

---

१०. सङ्खपाल-चरियं

पुनापरं यदा होमि सङ्खपालो महिद्धिको
दाठावुधो घोरविसो द्विजिव्हो उरगाधिभू ॥ १ ॥
चतुपथे महामग्गे नानाजनसमाकुले
चतुरो अङ्गे अधिट्ठाय तत्थ वासमकप्पयिं ॥ २ ॥
छविया चम्मेन मंसेन नहारु-अट्ठिकेहि वा
यस्स एतेन करणीयं दिन्नं येव हरातु सो ॥ ३ ॥
अद्दसंसु भोजपुत्ता खरालुद्दा अकारुणा
उपगच्छुं ममं तत्थ दण्डमुग्गरपाणिनो ॥ ४ ॥
नासाय विनिविज्झित्वा नङ्गुट्ठे पिट्ठिकण्टके
काजे आरोपयित्वान भोजपुत्ता हरिंसु मं ॥ ५ ॥
ससागरन्तं पठविं सकाननं सपब्बतं
इच्छमानो चहं तत्थ नासवातेन झापये ॥ ६ ॥
सूलेहि विज्झयन्तेपि कोट्टयन्तेपि सत्तिभि
भोजपुत्ते न कुप्पामि एसा मे सीलपारमीति ॥ ७ ॥

'हे पितामह ! महा-अग्नि जलाओ, मैं वृक्ष से (उसमें) कूदूँगा। तू उचित समय जान कर मुझे खाना' ॥१०॥

इस प्रकार मैंने शील-व्रत के कारण अपने जीवन की रक्षा न की, और मैंने उस जीवहिंसा करने वाले (यक्ष) को प्रव्रजित करा दिया ॥११॥

---

१०. शंखपाल चर्या

और फिर, जब मैं दाँत के हथियारवाला, भयानक विषधर, दो जीभवाला, महा ऋद्धिमान शंखपाल नामक साँपों का राजा हुआ था ॥१॥

तब मैं महामार्ग के चौरस्ते पर, जहाँ नाना प्रकार से लोग एकत्र होते थे, चार बातों का अधिष्ठान कर वहाँ रहता था ॥२॥

'छवि, चर्म, मांस, स्नायु और हड्डी—इनका जिसे प्रयोजन हो, वह ले जाये, मैंने दे ही दिया' ॥३॥

कड़े, रौद्र और निर्दयी व्याध-पुत्रों ने मुझे देखा और (वे) डण्डा-मुद्गर हाथ में ले मेरे पास वहाँ पहुँच आये ॥४॥

नाक, पूँछ और रीढ़ (= पीठ का काँटा) को नाथकर बहँगी पर रख व्याध-पुत्रों ने मुझे लाया ॥५॥

वहाँ मैं चाहते हुए नाक की वायु से सागर, जंगल और पर्वत सहित पृथ्वी को जला डालता ॥६॥

(किन्तु) सूओं से छेदते हुए भी, भालों से बेधते हुए भी मैंने व्याध-पुत्रों पर क्रोध नहीं किया। यह मेरी शील पारमिता है ॥७॥

उदानं

हत्थि-नागो भूरिदत्तो चम्पेय्यो बोधिमाहिसो
रुरु मातङ्गो धम्मो च अत्रजो च जयद्दिसो ॥ ८ ॥
एते सब्बे सीलबला परिक्खारा पदेसिका
जीवितं परिक्खित्वा सीलानि अनुरक्खिस्सं ॥ ९ ॥
सङ्खपालस्स मे सतो सब्बकालम्पि जीवितं
यस्स कस्सचि नीयन्तं तस्मा सा सीलपारमी 'ति ॥ १०

॥ सीलपारमिनिद्देसो निट्ठितो ॥

उदान

हस्ति-नाग, भूरिदत्त, चम्पेय्य, (चूल-) बोधि, महिष (-राज), रुरु, मातंग, धर्म और जयद्दिस का पुत्र ॥८॥

ये सब शील के बल, परिष्कार और प्रदेश हैं, (क्योंकि इनमें) मैंने जीवन की रक्षा कर शीलों का पालन किया ॥९॥

(किन्तु) मेरे शंखपाल होने पर सभी समय मेरा जीवन जिस किसी को दिया गया, इसलिए वह शील-पारमिता है ॥१०॥

ततियो परिच्छेदो

नेक्खम्मपारमिता

१. युधञ्जय-चरियं

यदा अहं अमितयसो राजपुत्तो युधञ्जयो
उस्सावबिन्दुं सुरियातपे पतितं दिस्वान संविजिं ॥ १ ॥
तञ्ञेवाधिपतिं कत्वा संवेगमनुब्रूहयिं
मातापितु च वन्दित्वा पब्बज्जमनुयाचहं ॥ २ ॥
याचन्ति मं पञ्जलिका सनेगमा सरट्ठका
अज्जेव पुत्त पटिपज्ज इद्धं फीतं महामहिं ॥ ३ ॥
सराजके सहोरोधे सनेगमे सरट्ठके
करुणं परिदेवन्ते अनपेक्खो हि पब्बजिं ॥ ४ ॥
केवलं पठविरज्जं ञातिपरिजनं यसं
चजमानो न चिन्तेसिं बोधिया येव कारणा ॥ ५ ॥
माता पिता न मे देस्सा नपि देस्सं महायसं
सब्बञ्ञुतम्पियं मय्हं तस्मा रज्जं परिच्चजिन्ति ॥ ६ ॥

---

२. सोमनस्स-चरियं

पुनापरं यदा होमि इन्दपत्ते पुरुत्तमे
कामितो दयितो पुत्तो सोमनस्सोति विस्सुतो ॥ १ ॥
सीलवा गुणसम्पन्नो कल्याणपटिभानवा
वुड्ढापचायी हिरिमा सङ्गहेसु च कोविदो ॥ २ ॥

तीसरा परिच्छेद

३. नैष्कर्म्य-पारमिता

१. युधञ्जय चर्या

जब मैं अपरिमित यश वाला युधञ्जय नामक राजपुत्र (= राजकुमार) हुआ था, तब सूर्य के धूप में ओस की बूँद को गिरते हुए देखकर संवेग को प्राप्त हुआ ॥१॥

उसी को प्रधान निमित्त बनाकर मैंने संवेग को बढ़ाया और माता-पिता को प्रणाम् कर प्रव्रजित होने के लिए याचना की ॥२॥

निगम (= जनपद) और राष्ट्र भर के लोग एक साथ मुझसे (रहने की) याचना करते थे। (तथा माता-पिता कहते थे–) 'पुत्र! आज ही इस उन्नति-प्राप्त, स्फीत महापृथ्वी को सम्हालो' ॥३॥

राजा, रानी, निगम और राष्ट्र—सबके एक साथ करुणा-भरे विलाप करते हुए होने पर भी मैं अपेक्षा-रहित प्रव्रजित हो गया ॥४॥

सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य, ज्ञाति-परिवार और यश को त्यागते हुए बोधि के लिए ही मैंने चिन्ता न की ॥५॥

माता-पिता मुझे अप्रिय न थे और न तो महा-यश ही अप्रिय था, मुझे सर्वज्ञता (=ज्ञान) प्रिय था, इसलिए मैंने राज्य को त्याग दिया ॥६॥

---

२. सौमनस्य चर्या

और फिर, जब मैं पुरों में उत्तम इन्द्रप्रस्थ में (माता-पिता की) प्रार्थना द्वारा प्राप्त, (उनका) प्यारा-पुत्र, शीलवान, गुणों से युक्त, उत्तम बुद्धिवाला, वृद्ध-सेवी, लज्जाशील और लोगों को मिलाकर रखने में चतुर सौमनस्य नाम से प्रसिद्ध (राजकुमार) हुआ था ॥१–२॥

तस्स रञ्ञो पतिकरो आसि कुहक-तापसो
आरामं मालागच्छञ्च रोपित्वान सो जीवति ॥ ३ ॥
तमहं दिस्वान कुहकं थुसरासिं व अतण्डुलं
दुमं अन्तो च सुसिरं कदलिं व असारकं ॥ ४ ॥
नत्थिमस्स सतं धम्मो सामञ्ञापगतो अयं
हिरिसुक्कधम्मजहितो जीवितवुत्तिकारणा ॥ ५ ॥
कुपितो अहोसि पच्चन्तो अटवीहि परन्तिहि
तं निसेधेतुं गच्छन्तो अनुसासि पिता ममं ॥ ६ ॥
मा पमज्जि तुवं तात जटिलं उग्गतापनं
यदिच्छकं पवत्तेहि सब्बकामददो हि सो ॥ ७ ॥
तमहं गन्त्वानुपट्ठानं इदं वचनमब्रविं
कच्चि ते गहपति कुसलं, किं वा ते आहरिय्यतु ॥ ८ ॥
तेन सो कुपितो आसि कुहको माननिस्सितो
घातापेमि तुवं अज्ज रट्ठा पब्बाजयामि वा ॥ ९ ॥
निसेधयित्वा पच्चन्तं राजा कुहकमब्रवि
कच्चि ते भन्ते खमनीयं सम्मानो ते पवत्तितो ।
तस्स आचिक्खति पापो कुमारो यथा नासितो ॥ १० ॥
तस्स तं वचनं सुत्वा आणापेसि महीपति
सीसं तत्थेव छिन्दित्वा कत्वान चतुखण्डिकं
रथिया रथियं दस्सेथ सा गति जटिलहीलिता ॥ ११ ॥
तत्थ कारुणिका गन्त्वा चण्डा लुद्दा अकारुणा
मातु अङ्के निसिन्नस्स आकड्ढित्वा नयन्ति मं ॥ १२ ॥
तेसाहं एवमवचं—बन्धतं गाल्हबन्धनं
रञ्ञो दस्सेथ मं खिप्पं राजकिरियानि अत्थि मे ॥ १३ ॥

(उस समय) उस राजा का प्रिय (एक) ठग-तपस्वी था, वह बगीचा और पुष्प-वाटिका रोप कर जीता था ॥३॥

उसे मैंने चावल-रहित भूसी के ढेर, बीच में छेद (= घोंघड़) वाले वृक्ष और सार-रहित केले के समान (तुच्छ) देखकर (जान लिया कि) इसमें सत्पुरुष-धर्म नहीं है। यह श्रामण्य (=साधुता) से दूर है। जीवन-वृत्ति के कारण (इसने) लज्जा रूपी शुक्ल-धर्म को छोड़ दिया है ॥४–५॥

जंगली लोगों से सीमान्त प्रदेश में विद्रोह हो गया था, उसे दमन करने के लिए जाते हुए मुझे पिता ने अनुशासन किया ॥६॥

'पुत्र ! उग्र-तपस्वी, जटाधारी के प्रति प्रमाद मत करना, उसे चाहा हुआ प्रदान करो, (क्योंकि) वह सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है' ॥७॥

मैंने उसकी सेवा में जाकर यह बात कही—'गृहपति ! क्या तुझे कुशल तो है ? अथवा क्या तेरे लिये मँगाया जाय ?' ॥८॥

वह अभिमानी ठग उससे क्रोधित हो उठा (और कहा)—'आज तुझे मरवा डालूँगा, या राष्ट्र से निर्वासित करा दूँगा' ॥९॥

सीमान्त का दमन कर (आ) राजा ने ठग को कहा—भन्ते ! क्या आपको कुशल तो है ? आपका सम्मान तो किया गया ?' पापी ने उसे ऐसे कहा जैसे कि कुमार नाश किया(= मारा) जाय ॥१०॥

उसकी उस बात को सुनकर राजा ने आज्ञा दी—'वहीं सिर काटकर, चार टुकड़े करके (एक) मार्ग से (दूसरे) मार्ग में प्रदर्शन करो कि जटाधारी के अपमान की यह गति होती है ॥११॥

तब निर्दयी, चण्ड, रौद्र और निष्करुण (राजपुरुष) वहाँ जा, माता की गोद में बैठे हुए मुझे खींचकर लाने लगे ॥१२॥

मजबूती के साथ मुझे बाँधनेवाले उन लोगों को मैंने ऐसा कहा—'मुझे राज-कार्य है, शीघ्र राजा को दिखलाओ' ॥१३॥

ते मं रञ्ञो दस्सयिंसु पापस्स पापसेविनो
दिस्वान तं सञ्ञापेसिं ममञ्च वसमानयिं ॥ १४ ॥
सो मं तत्थ खमापेसि महारज्जं अदासि मे
सोहं तमं दालयित्वा पब्बजिं अनगारियं ॥ १५ ॥
न मे देस्सं महारज्जं कामभोगो न देस्सियो
सब्बञ्ञुतम्पियं मय्हं तस्मा रज्जं परिच्चजिन्ति ॥ १६ ॥

---

३. अयोघर-चरियं

पुनापरं यदा होमि कासिराजस्स अत्रजो
अयोघरम्हि संवड्ढो नामेनासि अयोघरो ॥ १ ॥
दुक्खेन जीवितो लद्धो सम्पीळे पतिपोसितो
अज्जेव पुत्त पटिपज्ज केवलं वसुधं इमं ॥ २ ॥
सरट्ठकं सनिगमं सजनं वन्दित्वा खत्तियं
अञ्जलिं पग्गहेत्वान इदं वचनमब्रविं ॥ ३ ॥
ये केचि महिया सत्ता हीनमुक्कट्ठमज्झिमा
निरारक्खा सके गेहे वड्ढन्ति सह ञातिभि ॥ ४ ॥
इदं लोके उत्तरियं सम्पीळे मम पोसनं
अयोघरम्हि संवड्ढो अप्पभे चन्दसुरिये ॥ ५ ॥
पूतिकुणपसम्पुण्णा मुच्चित्वा मातुकुच्छितो
ततो घोरतरे दुक्खे पुन पक्खित्तयोघरे ॥ ६ ॥
यदिहं तादिसं पत्वा दुक्खं परमदारुणं
रज्जेसु यदि रज्जामि पापानमुत्तमो सिया ॥ ७ ॥
उक्कण्ठितोम्हि कायेन रज्जेनम्हि अनत्थिको
निब्बुतिं परियेसिस्सं यत्थ मं मच्चु न मद्दिये ॥ ८ ॥

वे मुझे पापी का साथ करनेवाले पापी राजा को दिखलाये। देखकर उसे मैंने समझाया और अपने वश में कर लिया ॥१४॥

उसने मुझे क्षमा कर दी और महाराज्य मुझे दे दिया। सो मैं (सम्मोह रूपी) अन्धकार को नष्ट कर बे-घर का हो प्रव्रजित हो गया ॥१५॥

न मुझे महाराज्य अप्रिय था और न तो काम-भोग ही अप्रिय था। मुझे सर्वज्ञता प्रिय थी, इसलिए मैंने राज्य को त्याग दिया ॥१६॥

---

३. अयोघर चर्या

और फिर, जब मैं काशि-नरेश का पुत्र हुआ था। लौह-गृह में पाला गया था और मेरा नाम अयोघर था ॥१॥

मैंने दुःख से जीवन पाया था और पीड़ा सहित पाला गया था। 'पुत्र! आज ही इस सम्पूर्ण पृथ्वी को राष्ट्र, निगम, और जनता के साथ सम्हालो।' मैंने राजा को प्रणाम् कर हाथ जोड़ यह बात कही ॥२-३॥

'पृथ्वी पर जो कोई हीन, उत्तम और मध्यम प्राणी हैं, सब अपने घर में भाई-बन्धुओं के साथ आरक्षा रहित बढ़ते हैं ॥४॥

(किन्तु) संसार में यह सब से बढ़कर है (जो कि) मेरा पोषण पीड़ा-सहित हुआ है। मैं चन्द्र-सूर्य के प्रकाश-रहित लौह-गृह में पाला गया हूँ ॥५॥

गन्दगी से भरे माता के पेट से निकल कर, तत्पश्चात् फिर लौह-गृह के भयानक दुःख में डाला गया ॥६॥

यदि मैं उस प्रकार के अत्यन्त भयानक दुःख को पाकर, राज्य में आनन्दित होऊँगा, तो मैं पापियों में श्रेष्ठ (= सबसे नीच) होऊँगा ॥७॥

मैं शरीर से उदासीन हूँ, राज्य से अनिच्छुक हूँ। मैं शान्ति को ढूढ़ूँगा, जहाँ पर कि मुझे मृत्यु मर्दन कर सके ॥८॥

एवाहं चिन्तयित्वान विरवन्तं महाजनं
नागो'व बन्धनं छेत्वा पाविसिं काननं वनं ॥ ९ ॥
माता पिता न मे देस्सा नपि मे देस्सं महायसं
सब्बञ्ञुतम्पियं मय्हं तस्मा रज्जं परिच्चजिन्ति ॥ १० ॥

---

४. भीस-चरियं

पुनापरं यदा होमि कासिनं पुरवरुत्तमे
भगिनी भातरो सत्त निब्बत्ता सोत्थिये कुले ॥ १ ॥
एतेसं पुब्बजो आसिं हिरिसुक्कमुपागतो
भवं दिस्वान भयतो नेक्खम्माभिरतो अहं ॥ २ ॥
मातापितूहि पहिता सहाया एकमानसा
कामेहि मं निमन्तेन्ति कुलवंसं धारेहीति ॥ ३ ॥
यं तेसं वचनं वुत्तं गिहीधम्मे सुखावहं
तं मे अहोसि कठिनं तत्तफालसमं विय ॥ ४ ॥
ते मं तदा उक्खिपन्तं पुच्छिंसु पत्थितं मम
किं त्वं पत्थयसि सम्म यदि कामे न भुञ्जसि ॥ ५ ॥
तेसाहं एवं अवचं अत्थकामो हितेसिनं
नाहं पत्थेमि गिहीभावं नेक्खम्माभिरतो अहं ॥ ६ ॥
ते मय्हं वचनं सुत्वा पितु मातु च सावेसुं
माता पिता एवमाहु—सब्बेपि पब्बजाम भो ॥ ७ ॥
उभो माता पिता मय्हं भगिनी च सत्त भातरो
अमितधनं छड्डयित्वा पाविसिम्ह महावनन्ति ॥ ८ ॥

मैं इस प्रकार विचार कर महाजन (– समूह) के रोते हुए, हाथी के समान बन्धन तोड़ जंगल में प्रवेश किया ॥९॥

न मुझे माता-पिता अप्रिय थे और न तो मुझे महायश ही अप्रिय था। मुझे सर्वज्ञता प्रिय थी, इसलिये मैंने राज्य त्याग दिया ॥१०॥

---

४. भीस चर्या

और फिर, जब मैं काशी (– जनपद) के श्रेष्ठ नगर (वाराणसी) में सात भाई और (एक) बहिन (के साथ) स्वस्ति (–औदित्य) कुल में उत्पन्न हुआ था ॥१॥

मैं इनमें ज्येष्ठ था और शुक्ल-धर्म लज्जा से युक्त था। मैं संसार को भय के तौर पर देखकर नैष्क्रम्य में रत हुआ ॥२॥

(मेरे) एक समान मन वाले मित्र माता-पिता के द्वारा भेजे गये काम-भोग से मुझे निमंत्रित करते थे—'तू कुल-वंश स्थापित करो' ॥३॥

जो उन्होंने यह बात कही कि गृहस्थ-जीवन सुखदायक है, वह मुझे कड़ी और तप्त (हल की) फाल के समान थी ॥४॥

तब उन्होंने मेरी प्रशंसा करते हुए मेरी कामना को पूछा— सौम्य ! यदि तू काम-भोगों का सेवन नहीं करते, तो क्या चाहते हो ?' ॥५॥

मैंने उन (अपने) अर्थ-काम को चाहने वाले हितैषियों को ऐसा कहा—'मैं गृहस्थ जीवन नहीं चाहता, मैं नैष्क्रम्य में रत हूँ' ॥६॥

उन्होंने मेरी बात सुन माता-पिता को सुनाई। तब माता-पिता ने कहा—'भो ! हम सब लोग प्रव्रजित हो जायँ' ॥७॥

मेरे दोनों माता-पिता, बहिन और सातों भाई अपरिमित धन को छोड़ कर महावन में प्रवेश किये ॥८॥

---

५. सोणपण्डित-चरियं

पुनापरं यदा होमि नगरे ब्रह्मवड्ढने
तत्थ कुलवरे सेट्ठे महासाले अजायहं ॥ १ ॥
तदापि लोकं दिस्वान अन्धभूतं तमोत्थतं
चित्तं भवतो पटिकुटति तुत्तवेगहतं विय ॥ २ ॥
दिस्वान विविधं पापं एवं चिन्तेसहं तदा
कदाहं गेहा निक्खम्म पविसिस्सामि काननं ॥ ३ ॥
तदापि मं निमन्तिंसु कामभोगेहि ञातयो
तेसम्पि छन्दमाचिक्खि मा निमन्तेथ तेहि मं ॥ ४ ॥
यो मे कनिट्ठको भाता नन्दो नामासि पण्डितो
सोपि मं अनुसिक्खन्तो पब्बज्जं समरोचयि ॥ ५ ॥
अहं सोणो च नन्दो च उभो माता पिता मम
तदापि भोगे छड्डेत्वा पविसिम्ह महावनन्ति ॥ ६ ॥

---

५. सोणपण्डित चर्या

और फिर, जब मैं ब्रह्मवर्द्धन (= वाराणसी) नगर में महाधनी सेठ के श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हुआ था ॥१॥

तब भी लोक को अन्धा हुआ और अन्धकार से ढँका हुआ देख कर तेज गजवाक (= तोमर)से आहत के समान मेरा चित्त संसार से सिकुड़ जाता था ॥२॥

उस समय मैंने नाना प्रकार के पाप को देखकर ऐसा विचार किया —'कब मैं घर से निकल कर जंगल में प्रवेश करूँगा ?' ॥३॥

उस समय भी भाई-बन्धुओं ने काम-भोगों से निमंत्रित किया। उन्हें भी मैंने (अपनी) रुचि बतलायी (और कहा)—'उन (काम-भोगों) से मुझे मत निमंत्रित करो' ॥४॥

जो नन्द पण्डित नामक मेरा छोटा भाई था, वह भी मेरा अनुकरण करते हुए प्रव्रज्या पसन्द किया ॥५॥

मैं, सोण और नन्द तथा मेरे दोनों माता-पिता उस समय भी (काम) भोगों को छोड़ कर महावन में प्रवेश किये ॥६॥

चतुत्थो परिच्छेदो

अधिट्ठानपारमिता

तेमिय-चरियं

पुनापरं यदा होमि कासिराजस्स अत्रजो
मूगपक्खोति नामेन तेमियोति वदन्ति मं ॥ १ ॥
सोळसित्थिसहस्सानं न विज्जति पुमो तदा
अहोरत्तानं अच्चयेन निब्बतो अहमेकको ॥ २ ॥
किच्छा लद्धम्पियं पुत्तं अभिजातं जुतिन्धरं
सेतच्छत्तं धारयित्वान सयने पोसेति मं पिता ॥ ३ ॥
निद्दायमानो सयनवरे पबुज्झित्वानहं तदा
अद्दसं पण्डरं छत्तं येनाहं निरयं गतो ॥ ४ ॥
सह दिट्ठस्स मे छत्तं तासो उप्पज्जि भेरवो
विनिच्छयं समापन्नो कथहं इमं मुञ्चिस्सं ॥ ५ ॥
पुब्बसालोहिता मय्हं देवता अत्थकामिनी
सा मं दिस्वान दुक्खितं तीसु ठानेसु योजयि ॥ ६ ॥
मा पण्डिच्चं विभावय बालमतो भव सब्बपाणिनं
सब्बो जनो ओचिनायतु एवं तव अत्थो भविस्सति ॥ ७ ॥
एवं वुत्तायहं तस्सा इदं वचनमब्रविं
करोमि ते तं वचनं यं त्वं भणसि देवते ॥ ८ ॥
अत्थकामासि मे अम्म हितकामासि देवते
तस्साहं वचनं सुत्वा सागरे'व थलं लभिं ॥ ९ ॥
हट्ठो संविग्गमानसो तयो अङ्गे अधिट्ठहिं
मूगो अहोसिं बधिरो पक्खो गतिविवज्जितो ॥ १० ॥

चौथा परिच्छेद

४. अधिष्ठान-पारमिता

१. तेमिय चर्या

और फिर, जब मैं काशी-नरेश का पुत्र हुआ था, मेरा नाम तेमिय था, (किन्तु) मुझे मूगपक्ख (= गूँगा-पंगु) कहते थे ॥१॥

उस समय (काशी-नरेश की) सोलह हजार स्त्रियों को (एक भी) सन्तान न थी। दीर्घकाल के बाद मैं अकेला उत्पन्न हुआ ॥२॥

कठिनाई से प्राप्त, कुलवान और प्रकाशमान मुझ प्यारे पुत्र को पिता श्वेत-छत्र लगवाकर शय्या पर (पालन-) पोषण करता था ॥३॥

तब मैं श्रेष्ठ शय्या पर सोते हुए उठकर श्वेत-छत्र को देखा, जिससे कि मैं (पूर्व जन्म में) नरक में गया था ॥४॥

मुझे छत्र देखने के साथ ही भयानक डर उत्पन्न हो आया। मैं विचारने लगा—'कैसे मैं इसको त्यागूँगा ?' ॥५॥

पहले की मेरी सम्बन्धिनी हितैषिणी देवी (= माता) ने मुझे दुःखी देख तीन बातों में नियुक्त किया ॥६॥

'पाण्डित्य मत प्रगट करो। सब प्राणियों के लिए मूर्ख हो जाओ। सारी जनता (तुझे कलमुँहा कहकर) निन्दा करे। इस प्रकार तेरा मतलब (सिद्ध) हो जायेगा ॥७॥

उसके ऐसा कहने पर मैंने उसे यह बात कही—'देवी ! जो तू कह रही हो, मैं तेरी उस बात को करूँगा ॥८॥

माता देवी तू मेरी भलाई चाहने वाली है, तू हितैषिणी है।' मैंने उसकी बात को सुनकर समुद्र में स्थल-सा पाया ॥९॥

प्रसन्न और संविग्न मन से तीन बातों का अधिष्ठान किया मैं गूँगा, बहरा और गति (= चलना-फिरना) रहित पंगु था ॥१०॥

एते अङ्गे अधिट्ठाय वस्सानि सोळसं वसिं
ततो मे हत्थपादे च जिह्वं सोतञ्च मद्दिय
अनूनतं मे पस्सित्वा कालकण्णीति निन्दिसुं ॥ ११ ॥
ततो जनपदा सब्बे सेनापति पुरोहिता
सब्बे एकमना हुत्वा छड्डनं अनुमोदिसुं ॥ १२ ॥
सोहं तेसं मतिं सुत्वा हट्ठो संविग्गमानसो
यस्सत्थाय तपो चिण्णो सो मे अत्थो समिज्झथ ॥ १३ ॥
नहापेत्वा अनुलिम्पित्वा वेठेत्वा राजवेठनं
छत्तेन अभिसिञ्चित्वा कारेसुं पुरपदक्खिणं ॥ १४ ॥
सत्ताहं धारयित्वान उग्गते रविमंडले
रथेन मं नीहरित्वा सारथी वनमुपागमि ॥ १५ ॥
एकोकासे रथं कत्वा सज्जस्सं हत्थमुञ्चितो
सारथि खणति कासुं निखातुं पठविया ममं ॥ १६ ॥
अधिट्ठितमधिट्ठानं तज्जेन्तो विविधकारणा
न भिन्दिं वतमधिट्ठानं बोधिया येव कारणा ॥ १७ ॥
माता पिता न मे देस्सा अत्ता न मे च देस्सियो
सब्बञ्ञुतम्पियं मय्हं तस्मा वतमधिट्ठहिं ॥ १८ ॥
एते अङ्गे अधिट्ठाय वस्सानि सोळसं वसिं
अधिट्ठानेन समो नत्थि एसा मे अधिट्ठानपारमीति ॥ १९ ॥

॥ अधिट्ठानपारमिता निट्ठिता ॥

इन बातों का अधिष्ठान कर मैंने सोलह वर्ष वास किया। तत्पश्चात् मेरे हाथ-पैर, जीभ और कान को मलकर कमी को न देख, 'कलमुँहा है' (कहकर) निन्दा किये ॥११॥

उसके बाद सब जनपदवासी, सेनापति और पुरोहित—सभी एक विचार वाले हो फेंकवा देने के लिए अनुमोदन किये ॥१२॥

सो मैं उनके विचार को सुनकर प्रसन्न और संविग्न-मन हुआ—'जिसके लिए मैंने तप किया, वह मेरा मतलब पूर्ण हो गया' ॥१३॥

नहला और लेपन कर राजवस्त्र पहना, (राज-) छत्र से अभिषेक कर नगर की प्रदक्षिणा कराये ॥१४॥

सप्ताह भर (राज-छत्र) धारण करके (आठवें दिन) सूर्योदय होने पर मुझे सारथी रथ द्वारा निकाल वन को गया ॥१५॥

(वहाँ) एक ओर रथ को करके बँधे हुए घोड़े को छुड़ा, खाली हाथ हो, मुझे पृथ्वी में गाड़ने के लिए सारथी गड्ढा खोदने लगा ॥१६।

मैंने अनेक प्रकार से तर्जन करते हुए अधिष्ठित अधिष्ठान और व्रत को बोधि (= परम ज्ञान) के लिए ही नहीं तोड़ा ॥१७॥

न मुझे माता-पिता अप्रिय थे और न तो मैं अपने को अप्रिय था। मुझे सर्वज्ञता प्रिय थी, इसलिए मैंने व्रत का अधिष्ठान किया ॥१८॥

इन बातों का अधिष्ठान कर मैंने सोलह वर्ष वास किया। अधिष्ठान में (कोई मेरे) समान नहीं, यह मेरी अधिष्ठान-पारमिता है ॥१९॥

॥ अधिष्ठान-पारमिता समाप्त ॥

पञ्चमो परिच्छेदो

सच्चपारमिता

१. कपिराज-चरियं

यदा अहं कपि आसिं नदीकूले दरीसये
पीलितो सुसुमारेन गमनं न लभामहं ॥ १ ॥
यम्होकासे अहं ठत्वा ओरपारं पतामहं
तत्थच्छि सत्तु-वधको कुम्भीलो रुद्ददस्सनो ॥ २ ॥
सो मं असंसि एहीति, अहमेमीति तं वदिं
तस्स मत्थकमक्कम्म परकूले पतिट्ठहिं ॥ ३ ॥
न तस्स अलिकं भणितं यथा वाचं अकासहं
सच्चेन मे समो नत्थि एसा मे सच्चपारमीति ॥ ४ ॥

---

२. सच्चसव्हयपण्डित-चरियं

पुनापरं यदा होमि तापसो सच्चसव्हयो
सच्चेन लोकं पालेसिं समग्गं जनमकासहन्ति ॥ १ ॥

---

३. वट्टपोतक-चरियं

पुनापरं यदा होमि मगधे वट्टपोतको
अजातपक्खो तरुणो मंसपेसि कुलावके ॥ १ ॥
मुखतुण्डकेनाहरित्वा माता पोसयति ममं
तस्सा फस्सेन जीवामि नत्थि मे कायिकं बलं ॥ २ ॥

पाँचवाँ परिच्छेद

५. सत्य-पारमिता

१. कपिराज चर्या

जब मैं बन्दर था और नदी के किनारे (एक) पहाड़ की गुफा में रहता था, (तब) मैं सुंसुमार (= मगर) से पीड़ित हो जाने नहीं पा रहा था ॥१॥

जिस स्थान पर खड़ा होकर मैं इस पार से उस पार को कूदता था, वहाँ (एक) भयानक, (मुझे) मारने वाला शत्रु मगर रहता था ॥२॥

उसने मुझे कहा—'आओ', 'मैं आ रहा हूँ' मैंने कहा (और) उसके मस्तक को कुचल (= काँड़) कर दूसरे किनारे (जा) खड़ा हुआ ॥३॥

मैंने उससे झूठ नहीं बोला। मैंने जैसी बात कही, वैसा ही किया। सत्य में (कोई) मेरे समान नहीं, यह मेरी सत्य-पारमिता है ॥४॥

---

२. सत्यसह्व पण्डित चर्या

और फिर, जब मैं 'सत्य' नामक तपस्वी हुआ था, तब मैंने सत्य से लोक का पालन किया और जनता को मिलाकर रखा ॥१॥

---

३. वट्टपोतक चर्या

और फिर, जब मैं मगध में बिना जमे पंख वाला, तरुण मांस का टुकड़ा (= लोथड़ा), घोंसले में पड़ा बटेर का बच्चा था ॥१॥

चोंच से लाकर माता मेरा पोषण करती थी, मैं उसके स्पर्श से जीता था, मुझे शारीरिक बल नहीं था ॥२॥

संवच्छरे गिम्हसमये दवदायो पदिप्पति
उपगच्छति अम्हाकं पावको कण्हवत्तनी ॥ ३ ॥
धूमधूमञ्जनित्वेवं सद्दायन्तो महा सिखी
अनुपुब्बेन झापेन्तो अग्गि ममुपागमि ॥ ४ ॥
अग्गिवेगभया भीता तसिता माता पिता मम
कुलावके मं छड्डेत्वा अत्तानं परिमोचयुं ॥ ५ ॥
पादे पक्खे पजहामि नत्थि मे कायिकं बलं
सोहं अगतिको तत्थ एवं चिन्तेसहं तदा ॥ ६ ॥
येसाहं उपधावेय्यं भीतो तसितवेधितो
ते मं ओहाय पक्कन्ता कथं मे अज्ज कातवे ॥ ७ ॥
अत्थि लोके सीलगुणो सच्चं सोचेय्यनुद्दया
तेन सच्चेन काहामि सच्चकिरियमुत्तमं ॥ ८ ॥
आवज्जेत्वा धम्मबलं सरित्वा पुब्बके जिने
सच्चबलमवस्साय सच्चकिरियमकासहं ॥ ९ ॥
सन्ति पक्खा अपतना सन्ति पादा अवञ्चना
माता पिता च निक्खन्ता जातवेदपटिक्कम ॥ १० ॥
सह सच्चे कते मय्हं महापज्जलिको सिखी
वज्जेसि सोलसकरीसानि उदकं पत्वा यथा सिखी
सच्चेन मे समो नत्थि एसा मे सच्चपारमीति ॥ ११ ॥

---

४. मच्छराज-चरियं

पुनापरं यदा होमि मच्छराज महासरे
उण्हे सुरियसन्तापे सरे उदकं खीयथ ॥ १ ॥

प्रति वर्ष ग्रीष्म काल में दावाग्नि से जंगल जलता था। जलती हुई आग हम लोगों के पास आ पहुँचती थी ॥३॥

इस प्रकार (उस समय भी) महा आग धुआँ पैदा करके शब्द करती हुई क्रमशः जलाती मेरे पास आ पहुँची ॥४॥

मेरे माता-पिता आग के वेग के भय से भयभीत और त्रसित हो, मुझे घोंसले में (ही) छोड़ अपने को मुक्त कर लिये ॥५॥

मैं पैरों और पाँखों को (उड़ने के लिए) फटफटाता था, किन्तु मुझे शारीरिक बल नहीं था। सो मैं गति-रहित तब वहाँ ऐसा विचार किया ॥६॥

'भयभीत, त्रसित और कम्पित हो मैं जिनके पीछे दौड़ता, वे मुझे छोड़कर चले गए, आज मुझे कैसा करना चाहिए ? ॥७॥

संसार में शील-गुण, सत्य, शौचेय (= पवित्रता) और करुणा हैं, इस सत्य (-वचन) से सर्वोत्तम सत्य-क्रिया करूँगा ॥८॥

मैंने धर्म-बल का विचार कर, पूर्वकाल के बुद्धों का स्मरण कर, सत्य-बल के सहारे सत्य-क्रिया की ॥९॥

'मेरी पाँखें उड़ने योग्य नहीं हैं, मेरे पैर (भी) चलने योग्य नहीं हैं और (मेरे) माता-पिता निकल गए हैं। हे आग ! लौट जाओ' ॥१०॥

मेरे सत्य-क्रिया करने के साथ ही महा धधकती हुई आग ने पानी पाकर शान्त होनेवाली आग की भाँति सोलह करीष[२५] (भूमि) को छोड़ दिया। सत्य में (कोई) मेरे समान नहीं, यह मेरी सत्य-पारमिता है ॥११॥

---

४. मत्स्यराज चर्या

और फिर, जब मैं बहुत बड़े तालाब में मत्स्यराज हुआ था ग्रीष्म से तालाब में पानी कम हो गया ॥१॥

ततो काका च गिज्झा च बका कुललसेनका
भक्खयन्ति दिवा रत्तिं मच्छे उपनिसीदिय ॥ २ ॥
एवं चिन्तेसहं तत्थ सह ञातीहि पीलितो
केन नु खो उपायेन ञाती दुक्खा पमोचये ॥ ३ ॥
विचिन्तयित्वा धम्मत्थं सच्चं अद्दस पस्सयं
सच्चे ठत्वा पमोचेसिं ञातीनं तं अतिक्खयं ॥ ४ ॥
अनुस्सरित्वा सद्धम्मं परमत्थं विचिन्तयं
अकासिं सच्चकिरियं यं लोके धुवसस्सतं ॥ ५ ॥
यतो सरामि अत्तानं यतो पत्तोस्मि विञ्ञुतं
नाभिजानामि सञ्चिच्च एकम्पाणं विहिंसितं
एतेन सच्चवज्जेन पज्जुन्नो अभिवस्सतु ॥ ६ ॥
अभित्थनय पज्जुन्न निधिं काकस्स नासय
काकं सोकाय रुन्धेहि मच्छे सोका पमोचय ॥ ७ ॥
सह कते सच्चवरे पज्जुन्नो चभिगज्जिय
थलं निन्नञ्च पूरेन्तो खणेन अभिवस्सथ ॥ ८ ॥
एवरूपं सच्चवरं कत्वा विरियमुत्तमं
वस्सापेसिं महामेघं सच्चतेजबलस्सितो
सच्चेन मे समो नत्थि एसा मे सच्चपारमीति ॥ ९ ॥

---

९. कण्हदीपायन-चरियं

पुनापरं यदा होमि कण्हदीपायनो इसि
परोपञ्ञासवस्सानि अनभिरतो चरिं अहं ॥ १ ॥
न कोचि एतं जानाति अनभिरतिमनं मम
अहम्पि कस्सचि नाचिक्खि अरतिं मे रतिमानसे ॥ २ ॥

तब कौवे, गिद्ध, बकुले, चीलें और बाज बैठकर रातों-दिन मछलियों को खाते थे ॥२॥

ज्ञाति (समूह) के साथ पीड़ित हो वहाँ मैंने ऐसा विचार किया— 'किस उपाय से ज्ञाति (-समूह) को दुःख से छुड़ाऊँ ?' ॥३॥

धर्म का विचार करके सत्य का सहारा देखा, मैंने सत्य पर खड़ा हो ज्ञाति (-समूह) को उस विनाश से बचाया ॥४॥

सद्धर्म का विचार कर, परमार्थ को सोच, मैंने सत्य-क्रिया की, जो कि संसार में ध्रुव और शाश्वत है ॥६॥

'जब से मैं अपना स्मरण करता हूँ, जब से मैं सयाना हुआ हूँ, जानबूझ कर एक प्राणी की भी हिंसा (करना) स्मरण नहीं। इस सत्य-वचन से मेघ बरसे' ॥६॥ हे मेघ ! गरजते हुए बरसो, कौवे की निधि का नाश करो। कौवे को शोक से घेर दो और मछलियों को शोक से छुड़ाओ' ॥७॥

उत्तम सत्य-क्रिया करने के साथ ही मेघ गरज कर ऊँची-नीची (भूमि) को भरते हुए क्षण भर में बरसा ॥८॥

इस प्रकार की उत्तम सत्य-क्रिया और उत्तम उद्योग को करके सत्य के तेज और बल के सहारे मैंने महामेघ बरसाया। सत्य में (कोई) मेरे समान नहीं, यह मेरी सत्य-पारमिता है ॥९॥

---

५. कृष्णद्वैपायन चर्या

और फिर, जब मैं कृष्णद्वैपायन ऋषि हुआ था, तब मैंने पचास वर्षों से अधिक बे-मन का विचरण किया ।१॥

कोई भी मेरे बे-मन के विचरण करने को नहीं जानता था, मैंने भी किसी को नहीं कहा कि मेरे मन में अ-रति (= उदासी) है। २॥

सब्रह्मचारी मण्डब्यो सहायो मे महा इसि
पुब्बकम्मसमायुत्तो सूलमारोपनं लभि ॥ ३ ॥

तमहं उपट्ठहित्वान आरोग्यमनुपापयिं
आपुच्छित्वान आगञ्छि यं मय्हं सकमस्समं ॥ ४ ॥

सहायो ब्राह्मणो मय्हं भरियमादाय पुत्तकं
तयो जना समागन्त्वा आगच्छुं पाहुनागतं ॥ ५ ॥

सम्मोदमानो तेहि सह निसिन्नो सकमस्समे
दारको वट्टमनुक्खिपं आसीविसमकोपयि ॥ ६ ॥

ततो सो वट्टगतं मग्गं अन्वेसन्तो कुमारको
आसीविसस्स हत्थेन उत्तमङ्गं परामसि ॥ ७ ॥

तस्स आमसने कुद्धो सप्पो विसबलस्सितो
कुपितो परमकोपेन अदंसि दारकं खणे ॥ ८ ॥

सह दट्ठो अतिविसेन दारको पपति भूमियं
तेनाहं दुक्खितो आसिं मम वाहसितं दुक्खं ॥ ९ ॥

त्याहं अस्सासयित्वान दुक्खिते सोकसल्लिते
पठमं अकासिं किरियं अग्गं सच्चं वरुत्तमं ॥ १० ॥

सत्ताहमेवाहं पसन्नचित्तो
पुञ्ञत्थिको अचरिं ब्रह्मचरियं
अथापरं यं चरितं ममयिदं
वस्सानि पञ्ञासस्समाधिकानि ॥ ११ ॥

अकामको वाहि अहं चरामि
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु
हतं विसं जीवतु यञ्ञदत्तो ॥ १२ ॥

मेरा मित्र और गुरुभाई मण्डव्य नामक महा ऋषि अपने पूर्व जन्म में किये कर्म के कारण शूली पर चढ़ने (= फाँसी) को प्राप्त हुआ ॥३॥

मैंने उसकी सेवा कर निरोग किया और आज्ञा ले जहाँ मेरा अपना आश्रम था वहाँ चला आया ॥४॥

मेरा मित्र (एक) ब्राह्मण अपनी स्त्री और पुत्र को लेकर आया। तीनों आदमी अतिथि के रूप में आये ॥५॥

मैं अपने आश्रम में बैठकर उनके साथ सम्मोदन (= कुशल-क्षेम पूछना) कर रहा था। लड़के ने गेंद कुदाते हुए गेहुँवन साँप (=आशी-विष) को कुपित कर दिया ॥६॥

तब वह लड़का गेंद गये हुए मार्ग से उसे खोजते हुए गेहुँवन साँप के सिर को हाथ से छू दिया ॥७॥

उसके छूने पर विषैला साँप क्रुद्ध हो उठा और उसी क्षण अत्यन्त क्रोध से लड़के को डँस दिया ॥८॥

गेहुँवन साँप के डँसने के साथ ही लड़का अधिक विष से भूमि पर गिर पड़ा, उससे मैं दुःखित हुआ, मुझे करुणापूर्ण दुःख हो आया ॥९॥

उन दुःखित, शोक रूपी काँटा धँसे हुए (माता-पिता) को आश्वासन देकर पहले श्रेष्ठ, सत्य और उत्तम सत्य-क्रिया को किया ॥१०॥

'मैंने पुण्याभिलाषी और प्रसन्न चित्त से (केवल) एक सप्ताह ही ब्रह्मचर्य का पालन किया, और उसके बाद जो यह मैंने पचास वर्षों से अधिक विचरण किया है, वह बे-मन का होकर विचरण किया है, इस सत्य- (वचन) से स्वस्ति हो, विष शान्त हो जाय और यज्ञदत्त[१६] जी जाय' ॥११॥

मेरे सत्य (-क्रिया) करने के साथ ही विष के वेग से बेधित लड़का (= माणवक) उठ बैठा और निरोग हो गया। सत्य में (कोई) मेरे समान नहीं है, यह मेरी सत्य-पारमिता है ॥१२॥

———

सह सच्चे कते मय्हं विसवेगेन वेधितो
अबुज्झित्वान वुट्ठासि आरोगो चासि माणवो
सच्चेन मे समो नत्थि एसा मे सच्चपारमीति ॥ १३ ॥

---

६. सुतसोम-चरियं

पुनापरं यदा होमि सुतसोमो महीपति
गहितो पोरिसादेन ब्राह्मणे सङ्गरं सरिं ॥ १ ॥
खत्तियानं एकसतं आवुनित्वा करतले
एते सम्पमिलापेत्वा यञ्ञत्थे उपनयि ममं ॥ २ ॥
अपुच्छि मं पोरिसादो किं त्वं इच्छसि निस्सज्जं
यथा मति ते काहामि यदि मे त्वं पुनेहिसि ॥ ३ ॥
तस्स पटिसुनित्वान पण्हे आगमनं मम
उपगन्त्वा पुरं रम्मं रज्जं निय्यादयिं तदा ॥ ४ ॥
अनुस्सरित्वा सतं धम्मं पुब्बकं जिनसेवितं
ब्राह्मणस्स धनं दत्वा पोरिसादं उपागमिं ॥ ५ ॥
नत्थि मे संसयो तत्थ घातयिस्सति वा न वा
सच्चवाचानुरक्खन्तो जीवितञ्चजितुमुपागमिं
सच्चेन मे समो नत्थि एसा मे सच्चपारमीति ॥ ६ ॥

॥ सच्चपारमिता निट्ठिता ॥

---

६. सुतसोम चर्या

और फिर जब मैं सुतसोम नामक राजा हुआ था, तब मनुष्य-भक्षक यक्ष (= पोरिषाद) द्वारा पकड़े जाने पर ब्राह्मण के (साथ की हुई) प्रतिज्ञा को स्मरण किया ॥१॥

एक सौ क्षत्रियों को हथेली में छेद नत्थी कर, इन्हें सुखा करके, मुझे यज्ञ करने (= बलि देने) के लिए ले गया ॥२॥

मनुष्य-भक्षक यक्ष ने मुझसे पूछा—'क्या तू छुटकारा चाहता है ? यदि तू फिर से चले आओगे, तो मैं तेरे इच्छानुसार करूँगा' ॥३॥

प्रातः आने के लिए मैंने उसे उत्तर दे, रमणीय नगर को जा राज्य को सौंप दिया ॥४॥

पूर्व-काल के बुद्धों द्वारा सेवित सद्धर्म का स्मरण कर, ब्राह्मण को धन दे, मनुष्य-भक्षक-यक्ष के पास चला आया ॥५॥

वह मुझे मारेगा या नहीं—इसमें कोई सन्देह नहीं था, किन्तु सत्य-वचन का पालन करते हुए मैं जीवन को त्यागने के लिए उसके पास गया। सत्य में (कोई) मेरे समान नहीं, यह मेरी सत्य-पारमिता है ॥६॥

छट्ठमो परिच्छेदो

मेत्तापारमिता

१. सुवण्णसाम-चरियं

सामो यदा वने आसिं सक्केन अभिनिम्मितो
पवने सीहब्यग्घे च मेत्तायमुपनामयिं ॥ १ ॥
सीहब्यग्घेहि दीपीहि अच्छेहि महिसेहि च
पसदमिगवराहेहि परिवारेत्वा वने वसिं ॥ २ ॥
न मं कोचि उत्तस्सति नपि भायामि कस्सचि
मेत्ताबलेनुपत्थद्धो रमामि पवने तदा ॥ ३ ॥

---

२. एकराज-चरियं

पुनापरं यदा होमि एकराजाति विस्सुतो
परमं सीलमधिट्ठाय पसासामि महामहिं ॥ १ ॥
दसकुसलकम्मपथे वत्तामि अनवसेसतो
चतूहि सङ्गहवत्थूहि सङ्गण्हामि महाजनं ॥ २ ॥
एवं मे अप्पमत्तस्स इध लोके परत्थ च
दब्बसेनो उपागन्त्वा अच्छिन्दन्तो पुरं ममं ॥ ३ ॥
राजूपजीवे निगमे सबलट्ठे सरट्ठके
सब्बं हत्थगतं कत्वा कासुया निक्खनि ममं ॥ ४ ॥
अमच्चमण्डलं रज्जं फीतं अन्ते पुरं मम
अच्छिन्दित्वान गहितं पियं पुत्तं व पस्सहं
मेत्ताय मे समो नत्थि एसा मे मेत्तापारमीति ॥ ५ ॥

॥ मेत्ता पारमिता निट्ठिता ॥

छठाँ परिच्छेद

६. मैत्री-पारमिता

१. सुवर्णसाम चर्या

जब मैं इन्द्र द्वारा निर्मित (= उत्पन्न) वन में साम नामक (कुमार तपस्वी) था, (तब) जंगल में सिंह और व्याघ्र को मैत्री से अपने पास लाया ॥१॥

मैं सिंह, व्याघ्र, चीते, रीच्छ (= भालू), भैंसों, पशद (= चितकबरे)—मृगों और सूअरों से घिर कर वन में रहता था ॥२॥

न मुझसे कोई त्रसित होता था और न तो मैं किसी से डरता था। मैत्री-बल से अवलम्बित हो उस समय मैं जंगल में रमण करता था ॥३॥

---

२. एकराज चर्या

और फिर, जब मैं एकराज नाम से प्रसिद्ध हुआ था, उत्तम शील का अधिष्ठान कर महापृथ्वी का अनुशासन करता था ॥१॥

सर्वांशतः दस कुशल-कर्म-पथ पर चलता था, और चार संग्रह-वस्तुओं[१७] से महाजन (–समूह) को मिलाकर रखता था ॥२॥

इस लोक और परलोक के प्रति इस प्रकार मेरे अप्रमत्त (= सतर्क) होने पर दब्बसेन[१८] मेरे नगर को छीनते हुए, राजा के सहारे जीनेवाले लोगों, निगमों में शासन-प्रबन्ध सम्हालनेवालों, सैनिकों और सारे राष्ट्र को—सब कुछ अपने हाथ में करके मुझे गड्ढे में गाड़ दिया ॥४॥

अमात्य-मण्डल, समृद्ध राज्य, और मेरे अन्तःपुर को जबरदस्ती छीने हुए (दब्बसेन को) मैंने प्रिय पुत्र के समान देखा। मैत्री में (कोई) मेरे समान नहीं, यह मेरी मैत्री-पारमिता है ॥५॥

॥ मैत्री-पारमिता समाप्त ॥

सत्तमो परिच्छेदो

उपेक्खापारमिता

महालोमहंस-चरियं

सुसाने सेय्यं कप्पेमि छवट्ठिकं निधायहं
गोमण्डला उपगन्त्वा रूपं दस्सेन्तिनप्पकं ॥ १ ॥
अपरे गन्धञ्च मालञ्च भोजनं विविधं बहुं
उपायनान्युपनेन्ति हट्ठा संविग्गमानसा ॥ २ ॥
ये मे दुक्खं उपदहन्ति ये च देन्ति सुखं मम
सब्बेसं समको होमि दयकोपो न विज्जति ॥ ३ ॥
सुखदुक्खे तुलाभूतो यसेसु अयसेसु च
सब्बत्थ समको होमि एसा मे उपेक्खापारमीति ॥ ४ ॥

॥ उपेक्खापारमिता निट्ठिता ॥

उदानं

युधञ्जयो, सोमनस्सो, अयोघरभिसेन च
सोणनन्दो, मूगपक्खो, कपिराजा, सच्चसह्वयो ॥ ५ ॥
वट्टको, मच्छराजा च, कण्हदीपायनो इसि
सुतसोमो, पुन आसिं सामो, च एकराजहु
उपेक्खापारमी आसि इति वुत्तं महेसिना ॥ ६ ॥
एवं बहुविधं दुक्खं सम्पत्ति च बहुविधा
भवाभवे अनुभवित्वा पत्तो सम्बोधिमुत्तमं ॥ ७ ॥

सातवाँ परिच्छेद

७. उपेक्षा-पारमिता

३. महालोमहर्षण चर्या

मैं श्मशान में मुर्दे की हड्डी पर सिर रखकर सोता था। वहाँ के लड़के मेरे पास आकर (नाना प्रकार के) बहुत अधिक विकारों (= रूप) को दिखलाते थे ॥१॥

दूसरे लोग नाना प्रकार के बहुत से गन्ध, माला, भोजन और उपहार लेकर प्रसन्न और संविग्न मन से मेरे पास आते थे ॥२॥

जो मुझे दुःख उत्पन्न करते थे और जो मुझे सुख देते थे, सबके लिए मैं समान था, मुझ में दया और क्रोध नहीं था ॥३॥

सुख और दुःख तथा यश और अपयश सब में मैं तुला की भाँति समान था। यह मेरी उपेक्षा-पारमिता है ॥४॥

॥ उपेक्षा-पारमिता समाप्त ॥

उदान

युधञ्जय, सौमनस्य, अयोघर और भीस; सोणनन्द, मूगपक्ख, कपिराजा, सत्यसह्व ॥५॥

वट्टक, मत्स्यराज, और कृष्णद्वैपायन ऋषि; सुतसोम, फिर मैं साम था और एकराज तथा उपेक्षा पारमिता थी—ऐसा महर्षि (= बुद्ध) ने कहा है ।६॥

इस प्रकार बहुत प्रकार के दुःख और बहुत प्रकार की सम्पत्ति का जन्म-जन्मान्तरों में अनुभव कर मैंने उत्तम सम्बोधि को प्राप्त किया ॥७॥

दत्वा दातब्बकं दानं, सीलं पूरेत्वा असेसतो,
निक्खम्मे पारमिं गन्त्वा, पत्तो सम्बोधिमुत्तमं ॥ ८ ॥
पण्डिते परिपुच्छित्वा, विरियं कत्वानमुत्तमं,
खन्तिया पारमिं गन्त्वा, पत्तो सम्बोधिमुत्तमं ॥ ९ ॥
कत्वा दळ्हं अधिट्ठानं, सच्चवाचानुरक्खिया,
मेत्ताय पारमिं गन्त्वा पत्तो सम्बोधिमुत्तमं ॥ १० ॥
लाभालाभे यसायसे सम्माननावमानने
सब्बत्थ समानो हुत्वा, पत्तो सम्बोधिमुत्तमं ॥ ११ ॥
कोसज्जं भयतो दिस्वा विरियारम्भं च खेमतो
आरद्धविरिया होथ एसा बुद्धानुसासनी ॥ १२ ॥
विवादं भयतो दिस्वा अविवादञ्च खेमतो
समग्गा सखिला होथ एसा बुद्धानुसासनी ॥ १३ ॥
पमादं भयतो दिस्वा अप्पमादञ्च खेमतो
भावे अट्ठङ्गिकंमग्गं एसा बुद्धानुसासनी ॥१४॥
इत्थं सुदं भगवा अत्तनो पुब्बचरियं सम्भावयमानो बुद्धापदानियं नाम धम्मपरियायं अभासित्था 'ति ॥

॥ चरियापिटकं निट्ठितं ॥

देने योग्य दान को देकर, परिपूर्ण शील का पालन कर, नैष्क्रम्य की पारमिता को जा, मैंने उत्तम सम्बोधि को प्राप्त किया ॥८॥

पण्डितों से पूछ कर, उत्तम उद्योग को करके, क्षान्ति की पारमिता को जा, मैंने उत्तम सम्बोधि को प्राप्त किया ॥९॥

दृढ़ अधिष्ठान कर, सत्य-वचन का पालन कर, मैत्री-पारमिता को जा, मैंने उत्तम सम्बोधि को प्राप्त किया ॥१०॥

लाभ-अलाभ, यश-अपयश और सम्मान-अपमान—सब में समान हो, मैंने उत्तम सम्बोधि को प्राप्त किया ॥११॥

आलस्य को भय के तौर पर और उद्योग को क्षेम के तौर पर देखकर उद्योगी होओ—यह बुद्धों का अनुशासन है ॥१२॥

विवाद को भय के तौर पर और अ-विवाद को क्षेम के तौर पर देखकर समग्र और प्रसन्न-चित्त होओ—यह बुद्धों का अनुशासन है ॥१३॥

प्रमाद को भय के तौर पर और अप्रमाद को क्षेम के तौर पर देखकर (आर्य-) अष्टाङ्गिक[१९] मार्ग की भावना करे—यह बुद्धों का अनुशासन है ॥१४॥

इस प्रकार भगवान् ने अपनी पूर्व-चर्या को प्रकाशित करते हुए 'बुद्ध-अपदान'[२०] (= बुद्ध-चरित) नामक धर्म-पर्याय (=उपदेश) कहा ॥

चरियापिटक समाप्त ।

चरियापिटकवण्णना

पठमो परिच्छेदो

१. दानपारमिता

१. अकित्तिचरियं

बोधिपाचन'न्ति बोधि वुच्चति सब्बञ्ञुतञाणं, पाचन'न्ति साधकं, निब्बत्तक'न्ति। अथवा बोधिया सम्भारभूत'न्ति अत्थो। **ठपयित्वा**' ति मुञ्चित्वा, अगहेत्वा, अवत्वा'ति अत्थो। **भवाभवे**'ति भवे च अभवे च, खुद्दके चेव महन्ते च भवस्मिन्ति वुत्तं होति। **ब्रहारञ्ञे**'ति महाअरञ्ञे, महन्ते वने'ति अत्थो। **विपिनकानने**'ति विपिनभूते कानने, पदद्वयेनापि तस्स अरञ्ञस्स गहणभावं दीपेति। **अज्झोगाहेत्वा**'ति अनुपविसित्वा। **तिदिवाभिभू**'ति देवलोकाधिपति सक्कोति अत्थो। **पवना**'ति अरञ्ञा। **सकटाहेना**'ति कपल्लकेन, पचनभाजनेन। **अनोलग्गो**'ति लोभवसेन ईसकम्पि अलग्गो। **अनोलीनो**'ति असंकुचितक चित्तोति अत्थो।

२. सङ्खचरियं

सङ्खसह्वयो'ति सङ्ख नामो। **उपगच्छामि पट्टन**'न्ति तम्मलित्तिपट्टनं उद्दिस्स गच्छामि। **सयम्भुमपराजित**'न्ति किलेसमारादिसु केनचि न पराजितन्ति अपराजितं, तिण्णं मारानं मत्थकं मद्दित्वाव ठितन्ति अत्थो। **तत्तायकठिनभूमिया**'ति घम्मसन्तापेन सन्तत्ताय सक्खरवालिकानिवितत्ता खराय कक्खलाय भूमिया। **महागम**'न्ति विपुलफलागमं सस्ससम्पत्तिदायकन्ति अत्थो। **कार**'न्ति सक्कारं। **मुद्दिकामो**'ति मुद्दाधिकारे ठपितो लञ्छनधरो अमच्चो। **परिहायती**'ति परिधंसति। **तेना**'ति ततो पच्चेकबुद्धतो।

३. कुरुधम्मचरियं

इन्दपत्ते पुरुत्तमे'ति इन्दपत्तनामके कुरुरट्ठस्स पुरवरे उत्तमनगरे। **कुसले दसहुपागतो**'ति कुसलेहि दसहि समन्नागतो, दानादीहि दसहि पुञ्ञकिरियवत्थूहि दसहि कुसलकम्मपथेहि वा युत्तो'ति अत्थो। **छातको**'ति महतीजिघच्छाबाधा वत्ततीति अत्थो। **अञ्जनसव्हय**'न्ति अञ्जनसद्देन अव्हातब्बं, अञ्जननामकन्ति अत्थो। **अनुच्छवो**'ति अनुच्छविको, पटिरूपो। **सङ्गामविजयुत्तम**'न्ति सङ्गामविजये उत्तमं पधानं पवरं नागं।

४. महासुदस्सनचरियं

तत्था'ति तस्मिं नगरे। **तसितो**'ति पिपासितो। **परिदहिस्सती**'ति निवासिस्सति। **मुदुसुभा**'ति दस्सनीयताय सुभा सुखसम्फस्सताय मुदु। **वनिब्बको**'ति याचको। **देस्स**'न्ति अमनापं, अप्पियन्ति अत्थो। **नपि नत्थि निचयो मयी**'ति मम समीपे धननिचयो धनसंगहो नापि नत्थि। सल्लेखवुत्ति समणो विय असंगहोपि न होमीति अत्थो। **निरालयो**'ति अनपेक्खो। **अपच्चासो**'ति किञ्चिपि अपच्चासिं। **सम्बोधिमनुपत्तिया**'ति सब्बञ्ञुतञाणमेव अधिगन्तुं।

५. महागोविन्दचरियं

नरदेवेही'ति राजूहि। **अक्खोभ**'न्ति अब्भन्तरेहि च बाहिरेहि च पच्चत्थिकेहि अपटिसेधनीयताय केनचि अक्खोभनियं।

६. निमिराजचरियं

मिथिलायं पुरुत्तमे'ति मिथिला नामके विदेहानं उत्तमे नगरे। **कुसलत्थिको**'ति पुञ्ञत्थिको। **चतुमुख**'न्ति चतुसु दिसासु चतूहि

द्वारेहि युत्तं। **अच्छादन**'न्ति खोमसुखुमादि नानाविध निवासनपारुपनं। **अब्बोच्छिन्नं करित्वाना**'ति आरब्भतो पट्ठाय यात्र आयुपरियोसाना अहोरत्तं अविच्छिन्नं कत्वा।

७. चन्दकुमारचरियं

एकराजस्स अत्तजो'ति एकराजस्स नाम कासिरञ्ञो ओरसपुत्तो। **नगरे पुप्फवतिया**'ति पुप्फवती नामके नगरे। अतीते किर अयं बाराणसी पुप्फवती नाम अहोसि। तत्थ वसवत्ति रञ्ञो मुत्तो एक राजा नाम रज्जं कारेसि। **यजना मुत्तो**'ति घातेतब्बतो युत्तो। **यञ्ञवाटतो**'ति यञ्ञभूमितो। **सकभुत्तापी**'ति सकभुत्ततोपि, अत्तना परिभुत्ततोपि। **न पटिक्कमामी**'ति ईसकम्पि न निवत्तामि, अभिक्कमामि एव।

८. सिविराजचरियं

अरिट्ठसव्हये नगरे'ति अरिट्ठपुर नामके नगरे। अरिट्ठनगरं नाम सिविरट्ठस्स राजधानी। **तथं नु वितथं एत**'न्ति एतं सच्चं नु खो उदाहु असच्चन्ति। **वेदजातो**'ति जातपीति-पामुज्जो। **अब्रवि**'न्ति अभासिं। **मा दन्धयी**'ति मा चिरायि। **उद्धरित्वा**'ति उप्पाटेत्वा। **तालमिञ्जं वा**'ति तालफलस्स मिञ्जं विय। **सीवको**'ति रञ्ञो वेज्जस्स नामं।

९. वेस्सन्तरचरियं

जेतुत्तरम्हि नगरे'ति जेतुत्तरनगरे, सिविरट्ठस्स जेतुत्तरनामप धाननगरे। तं हि किर सिविरट्ठस्स राजधानी अहोसि। **सञ्जयेन समागमी**'ति सञ्जय कुमारेन सद्धिं तस्सा विवाहो अहोसि। **खीणे**'ति भोगादीनि परिक्खीणे, पारिजुञ्ञपत्ते। **अकिञ्चने**'ति अपरिग्गहे। **न मत्तिकं नाम**'न्ति न मातु आगतं मातामहादीनं नामं। **सावेत्वा**'ति अज्जपट्ठाय

अहं इमस्स दासोति दासभावं सावेत्वा। **सभावं चिन्तयन्तस्सा**'ति अविपरीतं अत्तनो यथाभूतं सभावं अकित्तिमं यथाज्झासयं चिन्तयन्तस्स। **असण्ठित**'न्ति संकोचरहितं। **सिनेरुवनवटंसका**'ति सिनेरुम्हि उट्ठित नन्दनवन, फारुसकवन, चित्तलतावनादि कप्पकतरुवनं सिनेरुवनं। अथवा सिनेरु च जम्बुदीपादिसु रमणीयवनञ्च सिनेरुवनं तं वनवटंसकं एतिस्साति सिनेरुवनवटंसका। **पब्बाजेसु**'न्ति रज्जतो बहिवासत्थाय उस्सुक्कमकंसु। **निच्छुभमानान**'न्ति तेसु सिविसु निक्कड्ढन्तेसु पब्बाजेन्तेसूति अत्थो। **कण्णभेरिं**'न्ति युगलमहाभेरिं। **उब्बिधा**'ति उद्धं उग्गता, उच्चाउपगच्छन्ति। **चेतपुत्तेही**'ति चेतराजपुत्तेहि। **हिरोत्तप्पेन गरुना उभिन्न**'न्ति इमे सिविनं वचनं गहेत्वा अदूसकं धम्मे ठितं मं पब्बाजिंसूति चित्तप्पकोपं अकत्वा उभोसु एतेसु मातापितुसु धम्मगारवसमुस्सितेन हिरोत्तप्पेनेव यथारूपे उपसंकमि। **अविञ्ञाया**'ति अजानित्वा।

१०. ससपण्डितचरियं

आसय'न्ति वसनगुम्बं। **घासहेतू**'ति आहारहेतु। **दरथ**'न्ति परिळाहं।

———

दुतियो परिच्छेदो

२. सीलपारमिता

१. सीलवनागचरियं

मातुपोसको'ति मातुया पटिजग्गनको। **न तस्स परिक्खाय अत्थो**'ति तस्स गहणे गमनुपच्छेदनत्थं समन्ततो खणितब्ब-परिक्खाय अत्थो पयोजनं नत्थि। **आलक कासुया**'ति करेणुया कण्णपुटेन अत्तानं पटिच्छादेत्वा खित्तपासरज्जुया बन्धितब्ब आलक सङ्खात आळानेन वा यत्थ पविट्ठो कत्थचि गन्तुं न सक्कोति, तादिस वञ्चन कासुया वा अत्थो पयोजनं नत्थि। **पक्खित्तं ममालके**'ति आळानत्थम्भे पक्खिपन्तं। **कोट्टेयु**'न्ति भिन्देय्युं।

२. भूरिदत्तचरियं

संसितो'ति ठानं दस्सेत्वा कथितो। **आलम्बायनो**'ति आलम्बायन विज्जपरिजप्पनेन आलम्बायनो'ति एवं लद्धनामो, अहिकुण्डिक-ब्राह्मणो। **उप्पतना विया**'ति परिवत्तना विय।

३. चम्पेय्यनागचरियं

चम्पेय्यको'ति अङ्गमगधरट्ठानं अन्तरे चम्पा नाम नदी, तस्सा हेट्ठा नागभवनम्पि अविदूरभावत्ता चम्पा नाम नदी, तत्थ जातो नागराजा चम्पेय्यको।

४. चूलबोधिचरियं

दुतियिका'ति पोराणदुतियिका, गिहीकाले पजापतीभूता। **वट्टे अनपेक्खा**'ति संसारे निरालया। **चेतके**'ति अत्तनो राजपुरिसे आणापेत्वा तं परिब्बाजिकं गण्हापेत्वा। **ओदपत्तिकिया**'ति उदपत्तं आमसित्वा गहित भरिया ओदपत्तिका नाम।

५. महिसराजचरियं

पब्भारे'ति ओलङ्कसिलाकुच्छिम्हं । **दकासये**'ति जलासय समीपे । **ओहनेती**'ति करीसं ओस्सजति । **यक्खो**'ति तस्मिं रुक्खे अधिवत्था देवता । **छव**'न्ति तुच्छं, लामकं ।

६. रुरुराजचरियं

अस्सत्तकालमञ्ञाया'ति परिस्समं अपनेत्वा फलाफलानि दत्वा द्विहतिहच्चयेन किलमथस्स विगतकालं जानित्वा । **निम्मिनि**'न्ति परिवत्तेसिं, अत्तानं रञ्ञो निय्यादेत्वा राजहत्थतो पत्तं तस्स मरणं निवारेसिन्ति अत्थो ।

७. मातङ्गचरियं

जटिलो'ति जटावन्तो, जटाबन्धनकेसोति अत्थो ।

८. धम्मदेवपुत्तचरियं

पच्चनिका'ति रतिविरुद्धा । **समिम्हा**'ति समागता, सम्मुखीभूता ।

९. जयद्दिसचरियं

सुतधम्मो'ति बहुस्सुतो, अथवा विस्सुतधम्मो, धम्मचरियाय पकासो पञ्ञातो लोके पत्थटकित्तिधम्मोति अत्थो । **पोरिसाद-मुपागमी**'ति मनुस्सखादकं यक्खिणीपुत्तं उपगच्छि, तेन समागमि । **ऊरुथम्भो**'ति उभिन्नं ऊरूनं थद्धभावो, येन सो ततो पलायितुं नासक्खि । **मिगव**'न्ति मिगवसेन लद्धत्ता तं मिगवमंसं मिगवन्ति । **ब्याहरि**'न्ति अभासिं ।

१०. सङ्खपालचरियं

भोजपुत्ता'ति लुद्दपुत्ता । **लुद्दा**'ति दारुणा घोरमानसा ।

ततियो परिच्छेदो

३. नेक्खम्मपारमिता

१. धुयञ्जयचरियं

अमितयसो'ति अपरिमित परिवारविभवो। **अधिपतिं कत्वा**'ति पुब्बङ्गमं पुरेचारिकं कत्वा।

२. सोमनस्सचरियं

कामितो'ति मातापितु आदीहि "अहोवत! एको पुत्तो उपज्जेय्याति" एवं चिरकाले पत्थितो। **दयितो**'ति पियायितो। **पतिकरो**'ति वल्लभो। **कुहकतापसो**'ति कोहञ्ञेन जीवितसंकप्पको एको तापसो। **परन्तीही**'ति परन्तो, पच्चन्तो निवासभूतो एतेसं अत्थीति परन्तिनो, सीमन्तरिक वासिनो, तेहि चरन्तीहि अटविकेहि पच्चन्तदेसो खुभितो अहोसि।

३. अयोघरचरियं

अत्रजो'ति पुत्तो। **अयोघरम्ही**'ति सब्बअयोमये गेहे। **उत्तरिय**'न्ति असदिसं।

४. भीसचरियं

सोत्थिये कुले'ति मन्तज्झेन निरतताय सोत्थिये उदिते महती ब्राह्मणकुले। **उक्खिपन्त**'न्ति उद्धमुद्धं खिपन्तं छड्डेन्तं पटिक्खिपन्तं।

५. सोणपण्डितचरियं

नगरे ब्रह्मवड्ढने'ति ब्रह्मवड्ढननामके नगरे। अतीते बाराणसी नगरं एव ब्रह्मवड्ढननगरं नाम अहोसि। **तमोत्थट**'न्ति अविज्जन्धकारेन अभिभूतं। **पतिकुटती**'ति संकुचति, संनिलीयति, न विसरति। **तुत्तवेग हतो विया**'ति तुत्तं वुच्चति अयोकण्डसीसो दीघदण्डो, सो पतोदोति वुच्चति, तेन वेगसा अभिहतो विय।

चतुत्थो परिच्छेदो

४. अधिट्ठानपारमिता

१. तेमियचरियं

मूगपक्खो'ति मूगपक्ख वताधिट्ठानेन मूगपक्खो'ति मातापितरो आदिं कत्वा सब्बेव मं वदन्ति। **पुमो**'ति पुत्तो। **अभिजात**'न्ति जाति सम्पन्नं। **जुतिन्धर**'न्ति कायजुतिया चेव ञाणजुतिया च समन्नागतं। **पण्डर**'न्ति सेतवण्णं। **पुब्बसालोहिता**'ति पुब्बे एकस्मिं अत्तभावे मम माता भूतपुब्बा, तस्मिं छत्ते अधिवत्था देवता। **विभावया**'ति पकासेहि। **ओजिनायतू**'ति नीहरथेतं कालकण्णिन्ति अवजानातु। **पक्खो**'ति पीठसप्पी। **सज्जस्स**'न्ति सन्नद्धअस्सं।

पञ्चमो परिच्छेदो

५. सच्चपारमिता

१. कपिराजचरियं

दरीसये'ति दरीभागे। **असंसी**'ति अभासि।

३. वट्टपोतकचरियं

कण्हवत्तनी'ति अग्गि। **पजहामी**'ति गमनसज्जे करोन्तो पसारेमि इरियामि, वायामि। वेहासगमनयोग्गे कातुं ईहामीति अत्थो। **ओहाया**'ति जहित्वा। **जातवेदा**'ति अग्गिं आलपति। सो हि जातोव वेदीयति, धूमजातट्ठानेन पञ्ञायति, तस्मा जातवेदोति वुच्चति।

४. मच्छराजचरियं

पस्सय'न्ति अपस्सयं। **अतिक्खय**'न्ति विनासं। **पज्जुन्ना**'ति पज्जुन्नो वुच्चति मेघो, अयं पन मेघवसेन लद्धनामं वस्सवलाहकदेवराजानं आलपति।

५. कण्हदीपायनचरियं

परो पञ्ञासवस्सानी'ति साधिकानि पञ्ञासवस्सानि। **वट्टमनुक्खिप**'न्ति खिपनवट्टसण्ठानताय वट्टन्ति लद्धनामं भेण्डुकं अनुक्खिपन्तो, भेण्डुककीळं कीळन्तोति अत्थो। **अन्वेसन्तो**'ति गवेसन्तो। **मम वाहसितं दुक्ख**'न्ति तं दारकस्स मातापितूनञ्च दुक्खं मम वहासि, मय्ह सरीरे विय मम करुणाय वाहेसि। **अकामको वाही**'ति पब्बज्जं अनिच्छन्तो। **यञ्ञदत्तो**'ति तस्स कुमारस्स नामं।

६. सुतसोमचरियं

सङ्गर'न्ति पटिञ्ञं। **पण्हे**'ति पातो।

छट्ठो परिच्छेदो

६. मेत्तापारमिता

१. सुवण्णसामचरियं

अभिनिम्मितो'ति सक्कस्स देवानमिन्दस्स उपदेससम्पत्तिया जातत्ता सक्केन निब्बत्तियो जनितो। **पसदमिगवराहेही**'ति पसदमिगेहि चेव वनसूकरेहि च।

२. एकराजचरियं

पसासामि महामहि'न्ति योजनसतिके कासिरट्ठे महतिं महिं अनुसासामि रज्जं कारेमि। **चतूहि सङ्गहवत्थूही**'ति दानं, पियवचनं, अत्थचरिया, समानत्तताति इमेहि चतूहि सङ्गहवत्थूहि। **दब्बसेनो**'ति एवं नामको कोसलराजा। **अच्छिन्दन्तो पुरं मम**'न्ति मम बाराणसी नगरं बलक्कारेन गण्हन्तो।

---

७. उपेक्खापारमिता

३. महालोमहंसचरियं

गोमण्डला'ति गामदारका। **उपायनान्युपनेन्ती**'ति पन्नाकारानि उपहरन्ति। **उपदहन्ती**'ति उपनेन्ति, उप्पादेन्ति।

बोधिनी

१. कल्प—कल्प चार हैं—(१) संवर्त (= प्रलय) (२) संवर्त-स्थायी (=प्रलय के बाद जलमय अवस्था), (३) विवर्त (=सृष्टि) (४) विवर्त-स्थायी (=सृष्टि के उपरान्त संवृद्धि की अवस्था) । यह कल्प विवर्त-स्थायी कल्प है । इसमें चार बुद्ध उत्पन्न हो चुके हैं और पाँचवें 'मैत्रेय बुद्ध' उत्पन्न होने वाले हैं । पाँच बुद्धों के उत्पन्न होने के कारण इस कल्प को 'भद्र कल्प' भी कहते हैं ।

२. प्रत्येक बुद्ध—जो व्यक्ति स्वयं उद्योग कर ज्ञान प्राप्त करता है और उपदेश आदि न देकर परिनिर्वृत्त हो जाता है, उसे प्रत्येक बुद्ध कहते हैं ।

३. इन्द्रप्रस्थ—कुरु देश की प्राचीन राजधानी । वर्त्तमान दिल्ली के पास का इन्दरपत गाँव ।

४. कुशावती—कुशीनगर का प्राचीन नाम । मल्ल देश की राजधानी । वर्त्तमान कुशीनगर, जिला देवरिया, उत्तर प्रदेश ।

५. मिथिला—विदेह राष्ट्र की प्राचीन राजधानी ।

६. पुष्पवती नगर—बनारस का प्राचीन नाम । काशी देश की राजधानी ।

७. अरिष्ट नगर—शिवि राष्ट्र की राजधानी । वर्त्तमान सीबी, बिलोचिस्तान ।

८. जेत्तोत्तर नगर—शिवि राष्ट्र की प्राचीन राजधानी ।

९. चेदि राष्ट्र—जमुना नदी के दक्षिण आजकल का उत्तरी बुन्देलखण्ड ।

१०. उपोसथ—प्रतिमास की अष्टमी, पूर्णिमा और अमावस्या को उपोसथ का दिन कहते हैं, क्योंकि इसी दिन बौद्ध लोग अष्ट-शील ग्रहण कर उपोसथ व्रत रहते हैं ।

११. विरूपाक्ष—नागों के एक महाराजा । नागों के चार महाराजा हैं—विरूपाक्ष, एरापथ, छब्यापुत्र और कृष्णगौतम ।

१२. **दस कुशल कर्म-पथ**—दान, शील, भावना, बड़े लोगों का सत्कार करना, पुण्य कर्मों को करने में लगना, अपने किये हुए पुण्य में से दूसरों को भाग देना, दूसरे के पुण्य से भाग पाकर उसका अनुमोदन करना, सद्धर्म का श्रवण, धर्मोपदेश करना और कर्म-फल में विश्वास करना—ये दस कुशल कर्म-पथ हैं।

१३. **दस पाप**—तीन शारीरिक पाप, चार वाचिक पाप और तीन मानसिक पाप। तीन शारीरिक पाप हैं—जीवहिंसा, चोरी और व्यभिचार। चार वाचिक पाप हैं—झूठ बोलना, चुगली खाना, कटु वचन बोलना और बकवाद करना। तीन मानसिक पाप हैं—लोभ, द्वेष और कर्म-फल में विश्वास न करना (= मिथ्या-दृष्टि)।

१४. **कम्पिल नगर**—पाञ्चाल राष्ट्रकी राजधानी। वर्तमान फर्रुखाबाद जिले का काँपिल गाँव।

१५. **करीष**—चार अम्मण भूमि। प्राचीन काल में भूमि नापने का परिमाण विशेष। एक करीष आजकल के प्रायः एक कट्ठा के बराबर होता है।

१६. **यज्ञदत्त**—कृष्ण द्वैपायन ऋषि के पास आये हुए ब्राह्मण अतिथि के पुत्र का नाम, जिसे साँप ने डँसा था।

१७. **चार संग्रह वस्तुएँ**—दान, वैयावर्त्य (= सेवा-टहल), अर्थचर्या (= भलाई के कार्य करना) और समानत्वता (= समान भाव रखना)।

१८. **दब्बसेन**—इस नाम का कोसल-नरेश।

१९. **आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग**—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि—इन्हें आर्य अष्टांगिक मार्ग कहते हैं।

२०. **बुद्ध-अपदान**—यहाँ इसका अर्थ बुद्ध-जीवन-चरित है। 'अपदान' नामक ग्रन्थ नहीं।

———

